मार्च, 2024

I.S.S.N. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. राजीव मणि,
सचिव, विधायी विभाग

श्री अश्वनी,
संयुक्त सचिव और विधायी परामर्शी,
विधायी विभाग, (विभागाध्यक्ष) वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप, एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. आर्येन्दु द्विवेदी,
प्राचार्य, मां वैष्णों देवी ला कालेज
फैजाबाद रोड, चिनहट, लखनऊ, उ.प्र.

श्री कुलदीप चौहान,
चेयरमैन, एस.आर.सी. ला कालेज
129, सेक्टर-1, मंगल पाण्डेय नगर,
मेरठ, उ.प्र.

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री दयाल चन्द ग्रोवर,
सेवानिवृत्त उप-संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री अविनाश शुक्ला,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा,
संपादक

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह, जसवन्त सिंह, जाह्नवी शेखर शर्मा और अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

परामर्शदाता : सर्वश्री कमला कान्त, असलम खान और अविनाश शुक्ला

ISSN 2457-0494

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ` 195/-

वार्षिक : ` 2,100/-

© **2024 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय**

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

मार्च, 2024 अंक - 3

संपादक

पुंडरीक शर्मा

[2024] 1 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

---

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्‌वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्‌वारा पारित प्रतिवेद्‌य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

क्या आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री या दस्तावेज प्रस्तुत करने का अधिकार है ? इसी प्रश्न पर विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गुजरात राज्य** बनाम **दिलीपसिंह किशोरसिंह राव** [2024] 1 उम. नि. प. 107 वाले मामले में, जिसमें एक लोक सेवक अभियुक्त के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोतों से अननुपातिक आस्तियां होने के संबंध में मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था, यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय द्‌वारा अभियुक्त के विरुद्‌ध आरोप विरचित करने और संज्ञान लेने के समय पर अभियुक्त को कोई सामग्री प्रस्तुत करने और न्यायालय को उनकी परीक्षा हेतु निदेश देने का अधिकार नहीं है और न्यायालय को मामले के तथ्यों पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए केवल आरोप पत्र की सामग्री के आधार पर यह अवधारण करना चाहिए कि अभियुक्त के विरुद्‌ध प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है अथवा नहीं और इस प्रक्रम पर अभिलेख पर की सामग्री के साक्ष्यिक महत्व पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है और यदि अभियुक्त के विरुद्‌ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं तो उसके विरुद्‌ध आरोप विरचित करके विचारण आरंभ किया जाएगा । इसके अतिरिक्त, जहां विचारण न्यायालय द्‌वारा अभियुक्त के स्पष्टीकरण को उचित न पाया गया हो और आरोप पत्र की सामग्री से प्रथमदृष्ट्या मामला बनता हो, वहां उच्च न्यायालय द्‌वारा मामले के गुण-दोष पर विचार करते हुए अभियुक्त को उन्मोचित करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता ।

क्या विधिविरुद्ध जमाव के किसी मामले में प्रत्येक व्यक्ति को धारा 149 के माध्यम से दोषसिद्ध करने हेतु यह साबित करना आवश्यक है कि उसके द्वारा कोई सक्रिय भूमिका निभाई गई थी ? इसी प्रश्न पर विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **परशुराम** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** [2024] 1 उम. नि. प. 127 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि विधि-विरुद्ध जमाव के किसी मामले में विधिविरुद्ध जमाव का गठन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को धारा 149 की सहायता से दोषसिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके द्वारा कोई सक्रिय भूमिका निभाई गई हो और अभियोजन पक्ष द्वारा केवल यह सिद्ध करना पर्याप्त होगा कि वह व्यक्ति विधिविरुद्ध जमाव का गठन करने वाले व्यक्तियों के समूह में सम्मिलित था और उसने जमाव के अन्य सदस्यों के साथ धारा 141 में परिभाषित सामान्य उदेश्य को ग्रहण किया था । इसके अतिरिक्त, जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह स्पष्ट नहीं होता कि क्या अभियुक्तों द्वारा गठित विधिविरुद्ध जमाव का सामान्य उद्देश्य मृतक की मृत्यु कारित करना था और अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करने में असफल रहा हो कि विधिविरुद्ध जमाव का आशय मृतक की मृत्यु कारित करना था, वहां अभियुक्त संदेह के फायदे के हकदार हैं और इसलिए धारा 302 के अधीन की गई उसकी दोषसिद्धि कायम रखने योग्य नहीं है ।

इस अंक में विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान बोर्ड अधिनियम, 2008 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं।

पुंडरीक शर्मा
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

मार्च, 2024

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
गुजरात राज्य **बनाम** दिलीपसिंह किशोरसिंह राव	107
परशुराम **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य	127
मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** महंत सुरेश दास और अन्य	935
शदाक्षरी **बनाम** कर्नाटक राज्य और एक अन्य	147

संसद् के अधिनियम

विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान बोर्ड अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 - 14

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 197 – लोक सेवकों का अभियोजन – मंजूरी – अपीलार्थी-शिकायतकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध लोक सेवक के रूप में अपनी पदीय हैसियत का दुरुपयोग करके मृत व्यक्ति के नाम में संपत्ति के जाली दस्तावेज तैयार करने का अभिकथन करते हुए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किया जाना – प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा शिकायत को अभिखंडित करने के लिए धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय में आवेदन किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा आवेदन को खारिज किया जाना और कोई प्रतिकूल रिपोर्ट फाइल होने की दशा में उसे उपचार की ईप्सा करने की स्वतंत्रता दिया जाना – अन्वेषण के पश्चात् उसके विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जाना – प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा शिकायत और आरोप पत्र को अभिखंडित किए जाने की ईप्सा करते हुए पुन उच्च न्यायालय में समावेदन किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी के अभाव में शिकायत और आरोप पत्र दोनों को अभिखंडित किया जाना – औचित्य – धारा 197 किसी लोक सेवक को सेवा में रहते हुए किए गए प्रत्येक कार्य या लोप के लिए सुरक्षा कवच प्रदान नहीं करती है और यह केवल उन कार्यों या लोपों तक निर्बंधित है जो लोक सेवक द्वारा पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए हों और लोक सेवक के रूप में अपनी पदीय स्थिति का दुरुपयोग करके शासकीय दस्तावेज गढ़ना किसी लोक सेवक के पदीय कर्तव्य का भाग नहीं कहा जा सकता और पदीय स्थिति का दुरुपयोग

पृष्ठ संख्या

करके ऐसे शासकीय दस्तावेज गढ़े गए हैं या नहीं, यह विचारण का विषय है इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा शिकायत के साथ-साथ आरोप पत्र को भी अभिखंडित करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता और उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करना उचित होगा ।

शदाक्षरी बनाम **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** 147

– धारा 227 और 228 – उन्मोचन – अभियुक्त लोक सेवक के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोतों से अननुपातिक आस्तियां होने के संबंध में मामला रजिस्ट्रीकृत किया जाना – अभियुक्त द्वारा आरोपों का स्पष्टीकरण और दस्तावेज प्रस्तुत किया जाना – विभाग द्वारा अभियोजन चलाने की मंजूरी प्रदान किया जाना और अन्वेषण अभिकरण द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जाना – अन्वेषण अभिकरण द्वारा स्पष्टीकरण और दस्तावेजों पर विचार न करने और कोई मामला न बनने का कथन करते हुए अभियुक्त द्वारा विचारण न्यायालय में दस्तावेजों सहित उन्मोचन के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन खारिज हो जाना – आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर कोई सामग्री या दस्तावेज प्रस्तुत करने का अभियुक्त का अधिकार – सिद्धांत – न्यायालय द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित करने और संज्ञान लेने के समय पर अभियुक्त को कोई सामग्री प्रस्तुत करने और न्यायालय को उनकी परीक्षा करने के लिए कहने का अधिकार नहीं है और न्यायालय को मामले के तथ्यों पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए केवल आरोप पत्र की सामग्री के आधार पर यह अवधारण करना चाहिए

पृष्ठ संख्या

कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है या नहीं और इस प्रक्रम पर अभिलेख पर की सामग्री के साक्ष्यिक महत्व पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है और यदि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं तो उसके आवेदन को खारिज कर दिया जाएगा ।

गुजरात राज्य बनाम **दिलीपसिंह किशोरसिंह राव** 107

– धारा 227, 228 और 397 – अभियुक्त लोक सेवक के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोतों से अननुपातिक आस्तियां होने के संबंध में मामला रजिस्ट्रीकृत किया जाना – अभियुक्त द्वारा आरोपों का स्पष्टीकरण और दस्तावेज प्रस्तुत किया जाना – विभाग द्वारा अभियोजन चलाने की मंजूरी प्रदान किया जाना और अन्वेषण अभिकरण द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जाना – अन्वेषण अभिकरण द्वारा स्पष्टीकरण और दस्तावेजों पर विचार न करने और कोई मामला न बनने का कथन करते हुए अभियुक्त द्वारा विचारण न्यायालय में दस्तावेजों सहित उन्मोचन के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन खारिज हो जाना – उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर किया जाना – संधार्यता – पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा धारा 397 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए विचारण आरंभ होने से पूर्व एक अपील न्यायालय के रूप में अधिविष्ठ होकर प्रतिरक्षा पक्ष के साक्षियों के गुण-दोष पर विचार करना और अंततोगत्वा निकलने वाले निष्कर्ष की अधिसंभाव्यता के आधार पर अग्रसर होना विधिक रूप से अनुज्ञेय नहीं है

पृष्ठ संख्या

और जहां विचारण न्यायालय द्‌वारा अभियुक्त के स्पष्टीकरण को उचित न पाया गया हो और आरोप पत्र की सामग्री से प्रथमदृष्ट्या मामला बनता हो, वहां उच्च न्यायालय द्‌वारा मामले के गुण-दोष पर विचार करते हुए अभियुक्त को उन्मोचित करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता ।

गुजरात राज्य बनाम **दिलीपसिंह किशोरसिंह राव** 107

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 149 – विधिविरुद्‌ध जमाव – व्याप्ति और परिधि – विधिविरुद्‌ध जमाव का गठन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को धारा 149 की सहायता से दोषसिद्‌ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके द्‌वारा कोई सक्रिय भूमिका निभाई गई हो और अभियोजन पक्ष को यह सिद्‌ध करना होगा कि वह व्यक्ति विधिविरुद्‌ध जमाव का गठन करने वाले व्यक्तियों में सम्मिलित था और उसने जमाव के अन्य सदस्यों के साथ धारा 141 में परिभाषित सामान्य उदेश्य को ग्रहण किया था ।

परशुराम बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 127

– धारा 302/149, 326/149, 324/149ए 323/149, 147, 148 और धारा 304 भाग 2 – हत्या – विधिविरुद्‌ध जमाव – शिकायतकर्ता पक्ष की भैंस द्‌वारा अभियुक्त पक्ष के पशुओं के लिए बनाए गए छप्पर को नष्ट करने पर अभियुक्तों द्‌वारा विधिविरुद्‌ध जमाव का गठन करके शिकायतकर्ता पक्ष के परिवार के सदस्यों पर घातक आयुधों से हमला करके क्षतियां कारित किया जाना और एक की मृत्यु हो जाना – अभियुक्त पक्ष को

पृष्ठ संख्या

भी क्षतियां कारित होना और उनके द्वारा भी प्रति-मामला दर्ज कराया जाना – अभियुक्तों को धारा 302/149 सहित अन्य अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – संधार्यता – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह स्पष्ट नहीं होता कि क्या अभियुक्तों द्वारा गठित विधिविरुद्ध जमाव का सामान्य उद्देश्य मृतक की मृत्यु कारित करना था और अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करने में असफल रहा हो कि विधिविरुद्ध जमाव का आशय मृतक की मृत्यु कारित करना था, वहां अभियुक्त संदेह के फायदे के हकदार होते हुए उनकी धारा 302 के अधीन की गई दोषसिद्धि कायम रखने योग्य नहीं होने के कारण उसे धारा 304 भाग 2 के अधीन परिवर्तित करके सात वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देना उचित होगा ।

परशुराम बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 127

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2024] 1 उम. नि. प.

जनवरी-मार्च, 2024

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.	ए. आई. आर. (एस. सी.)	एस. सी. सी.
1	2	3	4	5
1.	अभिषेक **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (31 अगस्त, 2023)	[2024] 1 1	2023 4209	(2023) 16 666
2.	कमलाकर **बनाम** कर्नाटक राज्य (12 अक्तूबर, 2023)	23	–	15 544
3.	मानक चंद **उर्फ** मणि **बनाम** हरियाणा राज्य (30 अक्तूबर, 2023)	37	5600	– –
4.	मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** महंत सुरेश दास और अन्य (9 नवंबर, 2019)	703	–	(2019) 7 633

1	2	3		4		5		
5.	एन. रामकुमार **बनाम** राज्य मार्फत निरीक्षक (6 सितंबर, 2023)	[2024] 1	55	2023	4246	(2023)	–	–
6.	नरेश **उर्फ** नेहरू **बनाम** हरियाणा राज्य (9 अक्तूबर, 2023)		80		5054		10	134
7.	गुजरात राज्य **बनाम** दिलीपसिंह किशोरसिंह राव (9 अक्तूबर, 2023)		107		–		–	–
8.	परशुराम **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (3 नवंबर, 2023)		127		5685		–	–
9.	शदाक्षरी बनाम कर्नाटक राज्य और एक अन्य (17 जनवरी, 2024)		147		–		–	–

[2024] 1 उम. नि. प. 107

गुजरात राज्य

बनाम

दिलीपसिंह किशोरसिंह राव

[2023 की दांडिक अपील सं. 2504]

9 अक्तूबर, 2023

न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट और न्यायमूर्ति अरविन्द कुमार

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 227 और 228 – उन्मोचन – अभियुक्त लोक सेवक के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोतों से अननुपातिक आस्तियां होने के संबंध में मामला रजिस्ट्रीकृत किया जाना – अभियुक्त द्वारा आरोपों का स्पष्टीकरण और दस्तावेज प्रस्तुत किया जाना – विभाग द्वारा अभियोजन चलाने की मंजूरी प्रदान किया जाना और अन्वेषण अभिकरण द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जाना – अन्वेषण अभिकरण द्वारा स्पष्टीकरण और दस्तावेजों पर विचार न करने और कोई मामला न बनने का कथन करते हुए अभियुक्त द्वारा विचारण न्यायालय में दस्तावेजों सहित उन्मोचन के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन खारिज हो जाना – आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर कोई सामग्री या दस्तावेज प्रस्तुत करने का अभियुक्त का अधिकार – सिद्धांत – न्यायालय द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित करने और संज्ञान लेने के समय पर अभियुक्त को कोई सामग्री प्रस्तुत करने और न्यायालय को उनकी परीक्षा करने के लिए कहने का अधिकार नहीं है और न्यायालय को मामले के तथ्यों पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए केवल आरोप पत्र की सामग्री के आधार पर यह अवधारण करना चाहिए कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है या नहीं और इस प्रक्रम पर अभिलेख पर की सामग्री के साक्ष्यिक महत्व पर विचार करने

की आवश्यकता नहीं है और यदि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं तो उसके आवेदन को खारिज कर दिया जाएगा ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 227, 228 और 397 – अभियुक्त लोक सेवक के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोतों से अननुपातिक आस्तियां होने के संबंध में मामला रजिस्ट्रीकृत किया जाना – अभियुक्त द्वारा आरोपों का स्पष्टीकरण और दस्तावेज प्रस्तुत किया जाना – विभाग द्वारा अभियोजन चलाने की मंजूरी प्रदान किया जाना और अन्वेषण अभिकरण द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जाना – अन्वेषण अभिकरण द्वारा स्पष्टीकरण और दस्तावेजों पर विचार न करने और कोई मामला न बनने का कथन करते हुए अभियुक्त द्वारा विचारण न्यायालय में दस्तावेजों सहित उन्मोचन के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन खारिज हो जाना – उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर किया जाना – संधार्यता – पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा धारा 397 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए विचारण आरंभ होने से पूर्व एक अपील न्यायालय के रूप में अधिविष्ठ होकर प्रतिरक्षा पक्ष के साक्षियों के गुण-दोष पर विचार करना और अंततोगत्वा निकलने वाले निष्कर्ष की अधिसंभाव्यता के आधार पर अग्रसर होना विधिक रूप से अनुज्ञेय नहीं है और जहां विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त के स्पष्टीकरण को उचित न पाया गया हो और आरोप पत्र की सामग्री से प्रथमदृष्ट्या मामला बनता हो, वहां उच्च न्यायालय द्वारा मामले के गुण-दोष पर विचार करते हुए अभियुक्त को उन्मोचित करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन आरोप पत्र यह उल्लेख करते हुए फाइल किया गया था कि प्रत्यर्थी ने वर्ष 2005 से 2011 की अवधि के दौरान बोरसाद नगर पुलिस थाने के उप निरीक्षक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके और भ्रष्ट आचरण के आधार पर अपने और अपनी पत्नी के नाम में 1,15,35,319/- रुपए की आस्तियां अर्जित कीं जो उसकी आय के ज्ञात

स्रोतों से परे थी और यह 32,68,258/- रुपए की सीमा तक अननुपातिक थीं जो उसकी आय के ज्ञात स्रोत से 40 प्रतिशत अधिक बनती है । प्रत्यर्थी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 228 के साथ पठित धारा 227 के अधीन उन्मोचन के लिए आवेदन, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिवाक् करते हुए फाइल किया गया कि अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी उसके लिखित कथन और जंगम तथा स्थावर संपत्तियों का क्रय करने के लिए किए गए विनिधान के प्रत्येक अवसर पर विभाग को ब्यौरा प्रस्तुत किया गया था और तिस पर भी अन्वेषण अधिकारी इन पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार करने में असफल रहा था । यह भी अभिवाक् किया गया कि संपत्ति का क्रय करने के लिए विभाग द्वारा प्रदान की गई मंजूरी पर भी अन्वेषण अधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया और इसके साथ-साथ उन साक्षियों के कथन पर भी विचार नहीं किया गया था जिन्होंने प्रत्यर्थी को ऋण दिया था । प्रत्यर्थी ने आवेदन में यह दलील देते हुए कि आरोप पत्र की सामग्री से अभिकथित अपराध का कारित किया जाना प्रकट नहीं होता है, उसे उन्मोचित किए जाने का अभिवाक् किया । विचारण न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए और अधिकथित किए गए विनिश्चयाधार को प्रस्तुत तथ्यों पर लागू करते हुए आवेदन को खारिज कर दिया गया । उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर इस अपील में प्रत्यर्थी इसे उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में लेकर गया । उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन करके पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विचारण न्यायालय ने आवेदन को खारिज करके गलती की थी और प्रत्यर्थी के अभिवाक् को स्वीकार करते हुए, जो वास्तव में प्रतिरक्षा के रूप में था, उसे उन्मोचित कर दिया । उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर राज्य द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए

अभिनिर्धारित – यह सर्वमान्य विधि है कि यह अवधारण करने के लिए न्यायिक विवेक का प्रयोग किया जाना आवश्यक है कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण को अग्रसर करने के लिए मामला बनाया गया है या

नहीं और जब उन्मोचन के लिए आवेदन फाइल किया जाता है तो अभियुक्त की प्रतिरक्षा की परीक्षा करके मामले के गुण-दोष पर विचार करना आवश्यक नहीं होगा । इस प्रक्रम पर, विचारण न्यायाधीश को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की मात्र परीक्षा यह अवधारण करने के लिए करनी चाहिए कि क्या आरोप पत्र की सामग्री के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं या नहीं । अन्वेषण अभिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए या एकत्रित किए गए साक्ष्य की प्रकृति या प्रस्तुत किए गए दस्तावेज जिनसे प्रथमदृष्ट्या यह प्रकट होता हो कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए संदेहास्पद परिस्थितियां हैं, पर्याप्त होगा और ऐसी सामग्री पर आरोप विरचित करने के प्रयोजनार्थ विचार किया जाएगा । यदि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो आवश्यक रूप से अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया जाएगा किंतु यदि सामग्री पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय की राय है कि यह उपधारणा करने के लिए आधार हैं कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो विचारण योग्य है, तब आवश्यक रूप से आरोप विरचित किया जाना चाहिए । आरोप विरचित करने और संज्ञान लेने के समय पर अभियुक्त को कोई सामग्री प्रस्तुत करने और न्यायालय को उसकी परीक्षा के लिए आग्रह करने का कोई अधिकार नहीं है । संहिता में कोई उपबंध अभियुक्त को आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर कोई सामग्री या दस्तावेज फाइल करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है । विचारण न्यायालय को मामले के तथ्यों पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करना चाहिए जो यह अवधारण करने के लिए आवश्यक हो कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा केवल आरोप पत्र की सामग्री के आधार पर विचारण करने के लिए मामला बनाया गया है या नहीं । यदि अभियुक्त आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर आरोप पत्र की सामग्री से ऐसा प्रदर्शित करने में समर्थ रहता है जो मामले की संधार्यता को ही प्रबल रूप से प्रभावित कर सके, तो यह सुझाव देना अनुचित है कि न्यायालय द्वारा उस प्रक्रम पर ऐसी सामग्री पर विचार न किया जाए या अनदेखी की जाए । अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन यथा परिकल्पित निवेदन करने का अवसर प्रदान करने का मुख्य आशय

न्यायालय को यह अवधारण करने के लिए सहायता करना है कि क्या विचारण को अग्रसर किया जाना चाहिए या नहीं । संहिता में ऐसा कुछ नहीं है जो ऐसी सुनवाई की व्याप्ति को केवल मौखिक सुनवाई और मौखिक दस्तावेजों तक सीमित करती हो और इसलिए विचारण न्यायालय अभियुक्त द्वारा अन्वेषण अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री पर विचार कर सकता है । (पैरा 7, 8 और 9)

यह विधि का स्थिर सिद्धांत है कि उन्मोचन के लिए आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर न्यायालय को अवश्य इस धारणा के आधार पर अग्रसर होना चाहिए कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर जो सामग्री लाई गई है वह सत्य है और यह अवधारण करने के लिए उक्त सामग्री का मूल्यांकन करे कि क्या सामग्री से प्रकटित तथ्यों को देखते ही अभिकथित अपराध के आवश्यक संघटकों की विद्यमानता प्रकट होती है या नहीं । उस प्रक्रम पर अभियुक्त की प्रतिरक्षा पर विचार नहीं किया जाना चाहिए जब अभियुक्त उन्मोचित किए जाने की ईप्सा करता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 में प्रयुक्त "मामले के अभिलेख" अभिव्यक्ति को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों या वस्तुओं, यदि कोई है, के रूप में समझा जाना चाहिए । संहिता आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर अभियुक्त को कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने का कोई अधिकार नहीं देती है । अभियुक्त का निवेदन अन्वेषण अभिकरण द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री तक सीमित रहना चाहिए । (पैरा 10 और 11)

अभिवाक् या प्रतिरक्षा पर जब विचारण के दौरान साबित किए जाने की अपेक्षा की गई हो तो, यह स्वयमेव आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त है । प्रस्तुत मामले में विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने यह पाया था कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा उधार लिए गए ऋण से सेक्टर 11, सुमन सिटी कम्पलेक्स के भूखंड संख्या 19 की दुकान सं. 7 का क्रय करने और प्रत्यर्थी द्वारा संदाय करने के संबंध में दिया गया स्पष्टीकरण जांच अवधि के बाहर का था और इसलिए प्रत्यर्थी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण मात्र एक टाल-मटोल है । यह एक ऐसा विवाद्यक है जिस पर विचारण के दौरान विचार-विमर्श किया जाना

चाहिए था और आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर लघु विचारण नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा मारुति वेगन-आर कार, एक्टिवा स्कूटर खरीदने, मकान इत्यादि क्रय करने के संबंध में दिया गया स्पष्टीकरण, अभियोजन पक्ष के अनुसार, ये सभी विचारण की विषयवस्तु हैं या प्रतिरक्षा की प्रकृति की हैं जिनका विचारण के पश्चात् मूल्यांकन किया जाना होगा । पूर्वोक्त परिस्थितियों में, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित तर्कसंगत आदेश में हस्तक्षेप करके गंभीर गलती की थी । (पैरा 17 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 11 एस. सी. सी. 709 : **तमिलनाडु राज्य** बनाम **एन. सुरेश राजन और अन्य** ;	10
[2012]	(2012) 9 एस. सी. सी. 460 : **अमित कपूर** बनाम **रमेश चंद्रा** ;	13
[2000]	(2000) 6 एस. सी. सी. 338 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मोहन लाल सोनी** ;	12
[1996]	(1996) 4 एस. सी. 659 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सोम नाथ थापा ।**	12

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2023 की दांडिक अपील सं. 2504.

2016 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 387 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2018 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वसुश्री स्वाति घिलदियाल, देवयानी भट और नेहा सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री शामिक शिरीशभाई संजनवाला

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरविन्द कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – इस अपील में प्रत्यर्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) के अधीन आरंभ की गई कार्यवाहियों को उसके द्वारा इस आधार पर उन्मोचन के लिए आवेदन फाइल करके चुनौती दी गई थी कि अन्वेषण अधिकारी उसके द्वारा लिखित स्पष्टीकरण के साथ दिए गए समर्थनकारी दस्तावेजों पर विचार करने में असफल रहा था और मंजूरी प्राधिकारी द्वारा भी जो निष्कर्ष निकाला गया था वह इन दस्तावेजों पर विचार किए बिना निकाला गया था और इससे मस्तिष्क का प्रयोग न किया जाना प्रतिबिंबित होता है और तद्द्वारा मंजूरी प्राधिकारी द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अननुपात आस्तियां थीं, गलत है और आरोप पत्र की सामग्री से इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई परिस्थिति या साक्ष्य प्रकट नहीं होता है कि अभियुक्त के पास आय के स्रोतों से अननुपात आस्तियां थीं । विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 13 अप्रैल, 2016 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को नामंजूर किए जाने के पश्चात् प्रत्यर्थी ने 2016 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के साथ पठित धारा 397 के अधीन उच्च न्यायालय में समावेदन किया और तारीख 11 जनवरी, 2018 के आक्षेपित आदेश द्वारा इसे मंजूर किए जाने पर राज्य ने इस न्यायालय में समावेदन किया ।

2. हमारे विचार के लिए उद्भूत एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या मंजूरी प्राधिकारी का तारीख 5 मार्च, 2015 का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है और परिणामतः, भ्रष्टाचार निवारण ब्यूरो, आनंद पुलिस थाना द्वारा तारीख 17 जून, 2015 को फाइल किया गया आरोप पत्र अभिखंडित किए जाने योग्य है या नहीं ?

3. प्रत्यर्थी के विरुद्ध फाइल किए गए आरोप पत्र में प्रस्तुत अभियोजन का पक्षकथन इस आशय का है कि प्रत्यर्थी ने वर्ष 2005 से 2011 की अवधि के दौरान बोरसाद नगर पुलिस थाने के उप निरीक्षक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके और भ्रष्ट आचरण के आधार पर अपने और अपनी पत्नी

के नाम में 1,15,35,319/- रुपए की आस्तियां अर्जित कीं जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों से परे थी और यह 32,68,258/- रुपए की सीमा तक अननुपातिक थीं जो उसकी आय के ज्ञात स्रोत से 40 प्रतिशत अधिक बनती है ।

4. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 228 के साथ पठित धारा 227 के अधीन उन्मोचन के लिए आवेदन (अनुलग्नक पी-29), अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिवाक् करते हुए फाइल किया गया कि अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी तारीख 13 अगस्त, 2014 के लिखित कथन और उसके द्वारा आस्ट्रेलिया जाने के लिए अभिप्राप्त की गई अनुज्ञा पर विचार करने में असफल रहा था और जंगम तथा स्थावर संपत्तियों का क्रय करने के लिए किए गए विनिधान के प्रत्येक अवसर पर विभाग को ब्यौरा प्रस्तुत किया गया था और तिस पर भी अन्वेषण अधिकारी इन पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार करने में असफल रहा था । यह भी अभिवाक् किया गया था कि संपत्ति का क्रय करने के लिए विभाग द्वारा प्रदान की गई मंजूरी पर भी अन्वेषण अधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया था । यह भी अभिवाक् किया गया था कि अननुपातिक आस्ति की संगणना करने में की गई गलती को यद्यपि अन्वेषण अभिकरण के ध्यान में लाया गया था, तो भी इस पर विचार नहीं किया गया था और इसके साथ-साथ उन साक्षियों के कथन पर भी विचार नहीं किया गया था जिन्होंने प्रत्यर्थी को ऋण दिया था । यह भी आग्रह किया गया था कि आय के विभिन्न स्रोतों से संपत्तियों का क्रय करने के लिए प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी सबूत पर मंजूरी प्राधिकारी विचार करने में असफल रहा था और अन्वेषण अभिकरण उस रकम पर विचार करने में असफल रहा था जो मित्रों और परिवार के सदस्यों से ऋण के रूप में अभिप्राप्त की गई थी और जो दस्तावेजी साक्ष्यों द्वारा सम्यक् रूप से समर्थित थी । अत: प्रत्यर्थी ने आवेदन में यह दलील देते हुए कि आरोप पत्र की सामग्री से अभिकथित अपराध का कारित किया जाना प्रकट नहीं होता है, उसे उन्मोचित किए जाने का अभिवाक् किया ।

5. विचारण न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए और अधिकथित किए गए

विनिश्चयाधार को प्रस्तुत तथ्यों पर लागू करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

"(4) *** *** ***

इस प्रकार, पूर्वोक्त स्थिर सिद्धांतों और मामले के अभिलेख से निम्नलिखित पहलू प्रकट होते हैं –

(क) क्या अभियुक्त ने अपने भाई, माता और पिता से ऋण लिया था, यह एक तथ्य का प्रश्न है जिसे विचारण के दौरान विनिश्चित किया जाना है ;

(ख) मित्रों से ऋण के रूप में दस लाख रुपए लेने का तथ्य भी एक तथ्य का प्रश्न है जिसे विचारण के दौरान विनिश्चित किया जाना है ;

(ग) अन्य दो मित्रों अर्थात् इलियासभाई और नितेशभाई, जिन्होंने अभियुक्त को ऋण के रूप में रकम दी थी, यह भी एक तथ्य का प्रश्न है जिसे विचारण के दौरान विनिश्चित किया जाना है ;

(घ) अभियुक्त द्वारा संपत्ति का क्रय करने की बाबत विभाग को सूचित करने का तथ्य गुजरात सिविल सेवा नियमों के अधीन उसकी आय के संबंध में क्लीन चिट नहीं देता है । इसे मात्र सेवा नियमों और विनियमों का पालन किया जाना कहा जा सकता है, तथापि, यह बात उस प्रतिफल के मूल्य के संबंध में प्रामाणिकता की मुहर नहीं देती है जो आय के ज्ञात स्रोतों के अननुपातिक है ;

(ङ.) अभियुक्त द्वारा अननुपातिक आय के संबंध में दिए गए स्पष्टीकरण पर भी अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल करते समय और मंजूरी प्रदान करते समय विचार किया गया है ;

(च) आवश्यक मंजूरी अभिप्राप्त की गई है और इसलिए यह प्रश्न है कि जहां मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना मंजूरी

दी जाती है, वह भी विचारण के समय विनिश्चित किए जाने वाला तथ्य का प्रश्न है ;

(छ) आरोप पत्र के कागजातों के द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत भारी-भरकम अभिलेख से प्रथमदृष्ट्या दर्शित होता है कि यदि उनके प्रत्यक्ष महत्व पर विचार किया जाए तो इससे आय के ज्ञात स्रोतों से अननुपातिक आय होने के सभी संघटक प्रकट होते हैं ;

(ज) यहां तक कि व्यापक सिद्धांतों पर विचार करते हुए भी, अभियुक्त जो कुछ भी प्रतिरक्षा ले रहा है, यदि इस पर विचार किया जाए, तो यह नहीं कहा जा सकता कि अभिकथित अपराध का गठन करने के लिए संघटक लागू नहीं होते हैं ;

(झ) अभिलेख पर ऐसी कोई आधारभूत कमियां प्रतीत नहीं होती हैं जो अभियोजन के पक्षकथन को अकृत करती हों । यदि दो मत संभव हैं, तो प्रस्तुत मामले के कागजातों से स्पष्ट रूप से अभियुक्त के विरुद्ध अपने भाई, पिता, माता और अन्य मित्रों से ली गई ऋण की रकम के संबंध में और इसके साथ-साथ उसके पुत्र की आय के संबंध में भी, जो आस्ट्रेलिया में रहता है तथा उसकी कृषि आय के संबंध में गंभीर संदेह पैदा होता है और अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं ।

(5) अभिलेख पर के दस्तावेजों से प्रकटित इसमें ऊपर अभिलिखित तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता कि अभियुक्त उन्मोचित किए जाने के लिए दायी है चूंकि इस न्यायालय के लिए मामले के गुण-दोष के बारे में अतिगामी जांच करना और साक्ष्य का इस प्रकार मूल्यांकन करना अपेक्षित नहीं है मानो विचारण किया जा रहा हो । अन्यथा भी, आय के ज्ञात स्रोतों के मुकाबले अननुपातिक आस्तियों के संबंध में अभिकथन एक ऐसी विषयवस्तु है जिसे पूर्ण रूप से विचारण किए बिना आरंभ में ही विनिश्चित नहीं किया जा सकता, विशिष्ट रूप से जब जो अभियुक्त है उसे आय के उस स्रोत के संबंध में ज्ञान है

जो उसके द्वारा जंगम और स्थावर दोनों प्रकार की संपत्तियों का क्रय करते समय प्रयोग किया गया है और न्यायालय को इस प्रक्रम पर अभियुक्त के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या मामला दिखाई पड़ता है । इन परिस्थितियों में, आवेदन सारहीन है और इसलिए निम्नलिखित आदेश पारित किया जाता है ।"

और पूर्वोक्त कारणों से तारीख 13 अप्रैल, 2016 के आदेश (अनुलग्नक पी-30) के द्वारा आवेदन को खारिज कर दिया गया ।

6. उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर इस अपील में प्रत्यर्थी इसे उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में लेकर गया । जैसाकि पहले ही इसमें ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन करके आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विचारण न्यायालय ने आवेदन को खारिज करके गलती की थी और प्रत्यर्थी के अभिवाक् को स्वीकार करते हुए, जो वास्तव में प्रतिरक्षा के रूप में था, उसे उन्मोचित कर दिया ।

चर्चा और निष्कर्ष

7. यह अतिसामान्य विधि है कि यह अवधारण करने के लिए न्यायिक विवेक का प्रयोग किया जाना आवश्यक है कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण को अग्रसर करने के लिए मामला बनाया गया है या नहीं और जब उन्मोचन के लिए आवेदन फाइल किया जाता है तो अभियुक्त की प्रतिरक्षा की परीक्षा करके मामले के गुण-दोष पर विचार करना आवश्यक नहीं होगा । इस प्रक्रम पर, विचारण न्यायाधीश को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की मात्र परीक्षा यह अवधारण करने के लिए करनी चाहिए कि क्या आरोप पत्र की सामग्री के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं या नहीं । अन्वेषण अभिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए या एकत्रित किए गए साक्ष्य की प्रकृति या प्रस्तुत किए गए दस्तावेज जिनसे प्रथमदृष्ट्या यह प्रकट होता हो कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए संदेहास्पद परिस्थितियां हैं, पर्याप्त होगा और ऐसी सामग्री पर आरोप विरचित करने के प्रयोजनार्थ विचार किया जाएगा ।

यदि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो आवश्यक रूप से अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया जाएगा किंतु यदि सामग्री पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय की राय है कि यह उपधारणा करने के लिए आधार हैं कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो विचारण योग्य है, तब आवश्यक रूप से आरोप विरचित किया जाना चाहिए ।

8. आरोप विरचित करने और संज्ञान लेने के समय पर अभियुक्त को कोई सामग्री प्रस्तुत करने और न्यायालय को उसकी परीक्षा के लिए आग्रह करने का कोई अधिकार नहीं है । संहिता में कोई उपबंध अभियुक्त को आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर कोई सामग्री या दस्तावेज फाइल करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है । विचारण न्यायालय को मामले के तथ्यों पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करना चाहिए जो यह अवधारण करने के लिए आवश्यक हो कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा केवल आरोप पत्र की सामग्री के आधार पर विचारण करने के लिए मामला बनाया गया है या नहीं ।

9. यदि अभियुक्त आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर आरोप पत्र की सामग्री से ऐसा प्रदर्शित करने में समर्थ रहता है जो मामले की संधार्यता को ही प्रबल रूप से प्रभावित कर सके, तो यह सुझाव देना अनुचित है कि न्यायालय द्वारा उस प्रक्रम पर ऐसी सामग्री पर विचार न किया जाए या अनदेखी की जाए । अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन यथापरिकल्पित निवेदन करने का अवसर प्रदान करने का मुख्य आशय न्यायालय को यह अवधारण करने के लिए सहायता करना है कि क्या विचारण को अग्रसर किया जाना चाहिए या नहीं । संहिता में ऐसा कुछ नहीं है जो ऐसी सुनवाई की व्याप्ति को केवल मौखिक सुनवाई और मौखिक दस्तावेजों तक सीमित करती हो और इसलिए विचारण न्यायालय अभियुक्त द्वारा अन्वेषण अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री पर विचार कर सकता है ।

10. यह विधि का स्थिर सिद्धांत है कि उन्मोचन के लिए आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर न्यायालय को अवश्य इस धारणा के आधार पर अग्रसर होना चाहिए कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर

जो सामग्री लाई गई है वह सत्य है और यह अवधारण करने के लिए उक्त सामग्री का मूल्यांकन करे कि क्या सामग्री से प्रकटित तथ्यों को देखते ही अभिकथित अपराध के आवश्यक संघटकों की विद्‌यमानता प्रकट होती है या नहीं । **तमिलनाडु राज्य** बनाम **एन. सुरेश राजन और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस विषय पर अधिकथित की गई विधि की पूर्ववर्ती प्रतिपादनाओं का उल्लेख करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "29. हमने परस्पर-विरोधी दलीलों पर विचार किया है और श्री रंजीत कुमार द्‌वारा दी गई दलीलें सराहनीय हैं । यह सही है कि उन्मोचन के लिए आवेदनों पर विचार करने के समय पर न्यायालय अभियोजन पक्ष के प्रवक्ता के रूप में या डाकघर के रूप में कार्य नहीं कर सकता और यह पता लगाने के लिए साक्ष्य की छानबीन कर सकता है कि क्या किए गए अभिकथन निराधार हैं या नहीं जिससे उन्मोचन का आदेश पारित किया जा सके । यह अतिसामान्य बात है कि उन्मोचन के लिए आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर न्यायालय को इस धारणा के साथ अग्रसर होना चाहिए कि अभियोजन पक्ष द्‌वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री सत्य है और उक्त सामग्री और दस्तावेजों का यह पता लगाने की दृष्टि से मूल्यांकन करे कि क्या उससे प्रकट होने वाले तथ्यों से उनको देखते ही अभिकथित अपराध का गठन करने वाले सभी संघटकों का विद्‌यमान होना प्रकट होता है या नहीं । इस प्रक्रम पर, सामग्री के साक्ष्यिक महत्व पर विचार किया जाना चाहिए और न्यायालय से यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि वह मामले की गहराई में जाए और अभिनिर्धारित करे कि सामग्री से दोषसिद्‌धि नहीं हो सकेगी । हमारी राय में, जिस बात पर विचार किए जाने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या यह उपधारणा करने के लिए आधार है कि अपराध कारित किया गया है न कि क्या अभियुक्त को दोषसिद्‌ध करने के लिए कोई आधार बनता है या नहीं । दूसरे शब्दों में, यदि अभिलेख पर की सामग्री के आधार पर इसके साक्ष्यिक महत्व को देखते हुए न्यायालय का यह विचार है कि

---

[1] (2014) 11 एस. सी. सी. 709.

अभियुक्त ने अपराध कारित किया होगा, तो वह आरोप विरचित कर सकता है, यद्यपि दोषसिद्धि के लिए न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालना होगा कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है । विधि इस प्रक्रम पर एक लघु विचारण करने की अनुज्ञा नहीं देती ।'

11. उस प्रक्रम पर अभियुक्त की प्रतिरक्षा पर विचार नहीं किया जाना चाहिए जब अभियुक्त उन्मोचित किए जाने की ईप्सा करता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 में प्रयुक्त "मामले के अभिलेख" अभिव्यक्ति को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों या वस्तुओं, यदि कोई है, के रूप में समझा जाना चाहिए । संहिता आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर अभियुक्त को कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने का कोई अधिकार नहीं देती है । अभियुक्त का निवेदन अन्वेषण अभिकरण द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री तक सीमित रहना चाहिए ।

12. आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर प्राथमिक विचारणा एक प्रथमदृष्ट्या मामला विद्यमान होने की जांच का है और इस प्रक्रम पर अभिलेख पर की सामग्री के साक्ष्यिक महत्व पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है । **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सोम नाथ थापा**[1] और **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मोहन लाल सोनी**[2] वाले मामलों में के पूर्ववर्ती विनिश्चयों को निर्दिष्ट करते हुए इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर न्यायालय द्वारा किया जाने वाला मूल्यांकन प्रथमदृष्ट्या मामला विद्यमान होने की जांच की प्रकृति का है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर न्यायालय को अभिकथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यात्मक संघटकों के विद्यमान होने के बारे में एक उपधारणात्मक राय बनानी चाहिए और यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि अभिलेख पर की सामग्री के साक्ष्यिक महत्व की गहराई में जाया जाए और यह परख की जाए कि क्या अभिलेख पर की सामग्री से विचारण की समाप्ति पर निश्चित रूप से दोषसिद्धि हो जाएगी ।

13. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन उच्चतर न्यायालय

---

[1] (1996) 4 एस. सी. सी. 659.

[2] (2000) 6 एस. सी. सी. 338.

की जो शक्ति और अधिकारिता है, उसके द्वारा ऐसे न्यायालय में किसी अवर न्यायालय के अभिलेख को मंगवाने और उसकी परीक्षा करने की शक्ति किसी मामले में किन्हीं कार्यवाहियों की वैधता और नियमितता के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजनार्थ है । इस उपबंध का उद्देश्य किसी स्पष्ट त्रुटि या अधिकारिता अथवा विधि की गलती या अनुचितता को ठीक करना है जो ऐसी कार्यवाहियों में की गई है । **अमित कपूर** बनाम **रमेश चंद्रा**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करना उपयुक्त होगा जिसमें धारा 397 की व्याप्ति पर विचार किया गया था और संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया गया था :–

> "संहिता की धारा 397 में न्यायालय में किसी अवर न्यायालय के अभिलेख को मामले में किन्हीं कार्यवाहियों या किए गए आदेश की वैधता या नियमितता के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजनार्थ मंगाने और उसकी परीक्षा करने की शक्ति निहित की गई है । इस उपबंध का उद्देश्य किसी स्पष्ट त्रुटि या अधिकारिता अथवा विधि की गलती को ठीक करना है । गलती सुआधारित होनी चाहिए और न्यायालय के लिए ऐसे आदेशों की संवीक्षा करना समुचित नहीं हो सकेगा जो देखने से ही इन पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना दिखाई पड़ता है और विधि के अनुसार होना प्रतीत होता है । यदि इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को देखा जाए, तो यह प्रकट होता है कि पुनरीक्षण अधिकारिता का अवलंब वहां लिया जा सकता है जहां चुनौती अधीन विनिश्चय पूरी तरह से गलत हैं, विधि के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया है, अभिलिखित निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, तात्विक साक्ष्य की अनदेखी की गई है या न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने रूप से या अनुचित रूप से किया गया है । ये किस्म सर्वांगपूर्ण नहीं हैं अपितु मात्र निर्देशात्मक हैं । हर मामले का अवधारण उसके स्वयं के गुणागुण के आधार पर किया जाना होगा ।

[1] (2012) 9 एस. सी. सी. 460.

> 13. एक अन्य सर्वमान्य सन्नियम यह है कि उच्चतर न्यायालय की पुनरीक्षण अधिकारिता एक अति सीमित अधिकारिता है और नैमित्तिक रीति में इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता । अंतर्निहित निर्बंधनों में एक निर्बंधन यह है कि यह किसी अंतरिम या अंतरवर्ती आदेश के विरुद्ध नहीं होना चाहिए । न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग स्वयमेव प्रत्यक्षत: अन्याय का कारण नहीं बनना चाहिए । जहां न्यायालय इस बारे में प्रश्न पर विचार कर रहा हो कि क्या प्रस्तुत मामले में आरोप समुचित रूप से और विधि के अनुसार विरचित किया गया है या नहीं, उसे तब तक पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करने से बचना चाहिए जब तक कि मामला सारभूत रूप से ऊपर उल्लिखित प्रवर्गों के अंतर्गत न आता हो । दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन कार्यवाहियों में आरोप को विरचित करना भी एक बहुत अधिक उन्नत प्रक्रम होता है ।”

14. इस न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय में धारा 397 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग के लिए, विशिष्ट रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 228 के अधीन विरचित आरोप को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए किए गए निवेदन के संदर्भ में, विचार किए जाने वाले सिद्धांतों को निम्नलिखित प्रकार से अधिकथित किया है :–

> “27. इन दो उपबंधों अर्थात् संहिता की धारा 397 और धारा 482 के अधीन अधिकारिता की व्याप्ति और अधिकारिता संबंधी भिन्नता की बारीकी पर चर्चा करने के पश्चात् अब हमारे लिए उन सिद्धांतों को सूचीबद्ध करना उचित होगा जिनके प्रति निर्देश से न्यायालयों को ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए । तथापि, ऐसे सिद्धांतों का नियमनिष्ठता के साथ उल्लेख करना न केवल कठिन है अपितु अंतर्निहित रूप से असंभव भी है । अधिक से अधिक और इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का वस्तुपरक विश्लेषण करने के उपरांत हम इस अधिकारिता का

समुचित प्रयोग करने के लिए, विशिष्ट रूप से, यथास्थिति, या तो संहिता की धारा 397 या धारा 482 के अधीन या एकसाथ प्रयोग करते हुए आरोप को अभिखंडित करने के संबंध में विचार किए जाने वाले कुछ सिद्धांत निकाल सकते हैं ।

27.1 यद्यपि संहिता की धारा 482 के अधीन न्यायालय की शक्तियों पर कोई सीमा नहीं है किंतु जितनी ज्यादा शक्ति होगी, इन शक्तियों का अवलंब लेने के लिए उतनी ही अधिक सावधानी और सतर्कता बरती जानी चाहिए । दांडिक कार्यवाहियों, विशिष्ट रूप से संहिता की धारा 228 के निबंधनों के अनुसार विरचित आरोप को अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग यदा-कदा और सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए और वह भी विरल से विरले मामलों में ।

27.2 न्यायालय को इस परीक्षण को लागू करना चाहिए कि क्या अविवादित अभिकथनों से, जो मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के अनुसार किए गए हैं, प्रथमदृष्ट्या अपराध सिद्ध होता है या नहीं । यदि अभिकथन स्पष्ट रूप से इतने बेतुके और अंतर्निहित रूप से अनधिसंभाव्य हैं कि कोई प्रज्ञावान व्यक्ति कदापि ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता और जहां किसी दांडिक अपराध के मूलभूत संघटकों का समाधान नहीं होता है तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है ।

27.3 उच्च न्यायालय को अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । आरोप विरचित करने या आरोप अभिखंडित करने के प्रक्रम पर यह विचार करने के लिए कि क्या मामले में दोषसिद्धि हो जाएगी या नहीं, साक्ष्य की अति सावधानी से परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है ।

27.9 एक अन्य अति महत्वपूर्ण सावधानी जो न्यायालयों को बरतनी चाहिए, यह है कि वह अभिलेख पर के तथ्यों, साक्ष्य और सामग्री की यह अवधारणा करने के लिए परीक्षा नहीं कर सकता

कि क्या ऐसी पर्याप्त सामग्री है जिसके आधार पर मामले में अंत में दोषसिद्धि हो जाएगी ; न्यायालय का प्राथमिक रूप से सरोकार अभिकथनों पर समग्र रूप से यह विचार करना है कि क्या उनसे अपराध का गठन होता है और यदि गठन होता है तो क्या इससे न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग तो नहीं होगा जिसके कारण अन्याय हो ।

27.13 किसी आरोप को अभिखंडित करना अभियोजन की निरंतरता के नियम का अपवाद है । जहां अपराध के बारे में यहां तक कि मोटे तौर पर समाधान हो जाता है, न्यायालय का झुकाव उस आरंभिक प्रक्रम पर अभियोजन को अभिखंडित करने की बजाय इसे जारी रखने की अनुज्ञा देने के लिए अधिक रहना चाहिए । न्यायालय से यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि वह दस्तावेजों या अभिलेख की ग्राह्यता या विश्वसनीयता का विनिश्चय करने की दृष्टि से अभिलेख का क्रमबंधन करे अपितु प्रथमदृष्ट्या एक राय बनानी होती है ।"

15. पुनरीक्षण न्यायालय एक अपील न्यायालय के रूप में अधिविष्ठ नहीं हो सकता और साक्षियों के कथन में असंगतियों का पता लगाकर साक्ष्य का मूल्यांकन करना आरंभ नहीं कर सकता और यह विधिक रूप से अनुज्ञेय नहीं है । उच्च न्यायालयों को इस तथ्य का बोध होना चाहिए कि विचारण न्यायालय उन्मोचन के लिए आवेदन पर विचार कर रहा था ।

16. विधि के उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर जब उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश का परिशीलन किया जाए, तो यह हमें प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा दी गई दलीलों को एक से अधिक कारणों से अस्वीकार करने के लिए अधिक समय तक नहीं रोक सकेगा । प्रथमतः, आरोप पत्र अभियुक्त द्वारा अन्वेषण प्राधिकारी के समक्ष फाइल की गई लिखित दलीलों, जिनमें प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी साक्ष्य भी सम्मिलित हैं, पर विचार करने के पश्चात् फाइल किया गया

था । द्वितीयत:, उन मित्रों और परिचितों के कथन, जिनसे अभियुक्त द्वारा बड़ी मात्रा में रकम उधार ली गई थी, जिनका अभियुक्त द्वारा अन्वेषण प्राधिकारी के समक्ष फाइल की गई उसकी लिखित दलीलों में अभियोजन से बचने के लिए अवलंब लिया गया था और जिस सामग्री का मूल्यांकन करने पर उच्च न्यायालय इसे सत्य होना स्वीकार करने के लिए प्रेरित हुआ था, वह कुछ और नहीं अपितु प्रतिरक्षा साक्ष्य के रूप में इसे स्वीकार करने और यहां तक कि विचारण आरंभ होने या विचारण किए जाने से पूर्व इसकी अंतर्वस्तुओं की सत्यता की परीक्षा किए जाने के लिए कम है । तृतीयत:, उच्च न्यायालय पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करने के आधार के रूप में प्रतिरक्षा साक्ष्य का मूल्यांकन करके प्रतिरक्षा के गुण-दोष की परीक्षा करने और उस अधिसंभाव्य निष्कर्ष के साथ अग्रसर हुआ था जो अंततोगत्वा निकल सकता था, जोकि अननुज्ञेय था । चतुर्थत:, प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा कथित रूप से अपनी माता, भाई और पिता से अभिप्राप्त किए गए तात्पर्यित ऋण ऐसे तथ्य संबंधी प्रश्न हैं जिनका न्यायनिर्णयन किया जाना अपेक्षित है और यह केवल विचारण के दौरान किया जा सकता था और बड़ी मात्रा में इन राशियों को उधार लेने से संबंधित दिए गए स्पष्टीकरण से युक्तियुक्त संदेह उत्पन्न होता है, जिसे अन्वेषण अभिकरण द्वारा आरोप पत्र फाइल करने के लिए मजबूत सामग्री के रूप में बताया गया है और ऐसी सामग्री के आधार पर मंजूरी प्राधिकारी ने भी तारीख 5 मार्च, 2015 के मंजूरी आदेश के अधीन प्रत्यर्थी-अभियुक्त को अभियोजित किए जाने के लिए अपना समाधान अभिलिखित किया है । अत: अभियुक्त को उन्मोचित करने के लिए प्राथमिक प्रक्रम पर युक्तियुक्त संदेह उत्पन्न होना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता या अर्थ नहीं लगाया जा सकता ।

17. अभिवाक् या प्रतिरक्षा पर जब विचारण के दौरान साबित किए जाने की अपेक्षा की गई हो तो, यह स्वयमेव आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त है । प्रस्तुत मामले में विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने यह पाया था कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा उधार लिए गए ऋण से सेक्टर 11, सुमन सिटी काम्पलेक्स के भूखंड संख्या 19 की दुकान सं. 7 को क्रय

करने और प्रत्यर्थी द्वारा संदाय करने के संबंध में दिया गया स्पष्टीकरण जांच अवधि के बाहर का था और इसलिए प्रत्यर्थी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण मात्र एक टाल-मटोल है । यह एक ऐसा विवाद्यक है जिस पर विचारण के दौरान विचार-विमर्श किया जाना चाहिए था और आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर लघु विचारण नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा मारुति वेगन-आर कार, एक्टिवा स्कूटर खरीदने, मकान इत्यादि क्रय करने के संबंध में दिया गया स्पष्टीकरण, अभियोजन पक्ष के अनुसार, ये सभी विचारण की विषयवस्तु हैं या प्रतिरक्षा की प्रकृति की हैं जिनका विचारण के पश्चात् मूल्यांकन किया जाना होगा ।

18. पूर्वोक्त परिस्थितियों में, हमारा यह सुविचारित मत है कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित तर्कसंगत आदेश में हस्तक्षेप करके गंभीर गलती की थी । अत: 2016 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 387 में तारीख 11 जनवरी, 2018 को विचारण न्यायालय के तारीख 13 अप्रैल, 2016 के आदेश को अपास्त करते हुए पारित आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाना चाहिए और तद्नुसार इसे अपास्त किया जाता है और अपील मंजूर की जाती है । विचारण न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विचारण को अग्रसर करेगा कि आरोप पत्र वर्ष 2015 में खारिज किया गया था और विचारण को शीघ्रता से और अधिमानत: एक वर्ष की अवधि के भीतर समाप्त करेगा ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2024] 1 उम. नि. प. 127

परशुराम

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

[2021 की दांडिक अपील सं. 524 और इसके साथ 2023 की दांडिक अपील सं. 3416]

3 नवंबर, 2023

न्यायमूर्ति बी. आर. गवई, न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना और न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 149 – विधिविरुद्ध जमाव – व्याप्ति और परिधि – विधिविरुद्ध जमाव का गठन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को धारा 149 की सहायता से दोषसिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके द्वारा कोई सक्रिय भूमिका निभाई गई हो और अभियोजन पक्ष को यह सिद्ध करना होगा कि वह व्यक्ति विधिविरुद्ध जमाव का गठन करने वाले व्यक्तियों में सम्मिलित था और उसने जमाव के अन्य सदस्यों के साथ धारा 141 में परिभाषित सामान्य उदेश्य को ग्रहण किया था ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302/149, 326/149, 324/149ए 323/149, 147, 148 और धारा 304 भाग 2 – हत्या – विधिविरुद्ध जमाव – शिकायतकर्ता पक्ष की भैंस द्वारा अभियुक्त पक्ष के पशुओं के लिए बनाए गए छप्पर को नष्ट करने पर अभियुक्तों द्वारा विधिविरुद्ध जमाव का गठन करके शिकायतकर्ता पक्ष के परिवार के सदस्यों पर घातक आयुधों से हमला करके क्षतियां कारित किया जाना और एक की मृत्यु हो जाना – अभियुक्त पक्ष को भी क्षतियां कारित होना और उनके द्वारा भी प्रति-मामला दर्ज कराया जाना – अभियुक्तों को धारा 302/149 सहित अन्य अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – संधार्यता – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह स्पष्ट नहीं होता कि क्या अभियुक्तों द्वारा गठित विधिविरुद्ध जमाव

का सामान्य उद्देश्य मृतक की मृत्यु कारित करना था और अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करने में असफल रहा हो कि विधिविरुद्ध जमाव का आशय मृतक की मृत्यु कारित करना था, वहां अभियुक्त संदेह के फायदे के हकदार होते हुए उनकी धारा 302 के अधीन की गई दोषसिद्धि कायम रखने योग्य नहीं होने के कारण उसे धारा 304 भाग 2 के अधीन परिवर्तित करके सात वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देना उचित होगा ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी जालिम सिंह ने गांव के रास्ते पर पशुओं के प्रयोग के लिए एक छप्पर (तापड़िया) का निर्माण किया था । शिकायतकर्ता पक्ष की एक भैंस द्वारा उक्त छप्पर को ध्वस्त कर दिया गया था, इसलिए अपीलार्थी जालिम सिंह ने लाठी से उस भैंस की पिटाई की थी और उस भैंस को भगा दिया था । उसके पश्चात्, अपीलार्थी जालिम सिंह, राम सेवक **उर्फ** सेवक, राम लखन **उर्फ** लखन, रामरूप **उर्फ** रूपा, राम सहाय, परशुराम (2021 की दांडिक अपील सं. 524 में अपीलार्थी) और मंगल सिंह नामक व्यक्ति चिरोंजी (अभि. सा. 6) के मकान पर आए । यह देखकर चिरोंजी डर के मारे मकान से भाग गया । उसके पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों ने दरवाजा तोड़ा और उसके मकान में घुस गए और उसके परिवार के सदस्यों की पिटाई की । उसके पश्चात्, सभी अभियुक्त व्यक्ति वहां से भाग गए । शिकायतकर्ता पक्ष के लोग जब एक ट्रैक्टर पर सवार होकर शिकायत दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने जा रहे थे, तब अभियुक्त व्यक्तियों ने उनका रास्ता रोक लिया और घातक आयुधों से उनको गंभीर क्षतियां कारित कीं और बाद में क्षतियों के कारण एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई । अभियुक्त व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् आरोप पत्र फाइल किया गया । विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त व्यक्तियों (कुल मिलाकर नौ) ने उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से यह कहते हुए इनकार किया कि उन्हें एक भूमि विवाद के कारण मिथ्या रूप से फंसाया गया है । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से साबित होता है कि अभियुक्त व्यक्तियों परशुराम, राम सहाय, मंगल सिंह, राम लखन,

रामरूप **उर्फ** रूपा, राम सेवक **उर्फ** सेवक और जालिम सिंह ने घटना की तारीख को एक विधिविरुद्ध जमाव का गठन किया था और उसके पश्चात् उन्होंने शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों पर घातक आयुधों का प्रयोग करके गंभीर हमला किया और तद्द्वारा अपने विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य आशय को अग्रसर करने में उनमें से एक की हत्या की गई और सात अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302, धारा 149 के साथ पठित धारा 326, धारा 149 के साथ पठित धारा 324, धारा 149 के साथ पठित धारा 323, धारा 147 और धारा 148 के अधीन आरोपों का दोषी अभिनिर्धारित किया गया और शेष दो अभियुक्तों अर्थात् दीवान सिंह और सियाराम को आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया । विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर अभियुक्तों (परशुराम और अन्य) द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की गई और अभियुक्त जालिम सिंह द्वारा अलग से एक अन्य दांडिक अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा दोनों दांडिक अपीलों को खारिज कर दिया गया और विचारण न्यायालय द्वारा यथाअभिलिखित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश की अभिपुष्टि की गई । इससे व्यथित होकर, अभियुक्त परशुराम और जालिम सिंह द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को भागत: मंजूर करते हुए

अभिनिर्धारित – विधिविरुद्ध जमाव का गठन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 149 की सहायता से दोषसिद्ध करने के लिए सक्रिय भूमिका निभानी आवश्यक नहीं है । अभियोजन पक्ष द्वारा जो सिद्ध किया जाना चाहिए वह यह है कि वह व्यक्ति विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होना चाहिए अर्थात् वह जमाव का गठन करने वाले व्यक्तियों में से एक होना चाहिए और उसने जमाव के अन्य सदस्यों के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के अधीन यथा परिभाषित सामान्य उद्देश्य को ग्रहण किया था । जैसाकि भारतीय दंड संहिता की धारा 142 में उपबंधित किया गया है, जो कोई उन तथ्यों से परिचित होते हुए, जो किसी जमाव को विधिविरुद्ध जमाव बनाते हैं, उस

जमाव में साशय सम्मिलित होता है, या उसमें बना रहता है, वह विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य है, यह कहा जाता है । निर्विवाद रूप से, चिरोंजी (अभि. सा. 6) और रामहेत (अभि. सा. 12) के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलार्थी विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य थे । इसमें कोई संदेह नहीं है कि मृतक मदन पर हमला करने में वर्तमान अपीलार्थियों की विनिर्दिष्ट भूमिका का उल्लेख नहीं किया गया है । तथापि, चूंकि अपीलार्थी विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य थे, इसलिए इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को दोषसिद्ध करने के लिए उसने वास्तव में मृतक पर हमला किया हो । यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् इस न्यायालय द्वारा जिस प्रश्न का उत्तर देना रहता है, वह इस बारे में है कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि मान्य है या नहीं । (पैरा 14, 15 और 16)

यद्यपि विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता पक्ष के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 341, 294, 147, 148 और 149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए रजिस्ट्रीकृत किए गए मामले के तथ्यों को निर्दिष्ट किया, तो भी विचारण न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों पर हमला करने में कोई घातक आयुध प्रयुक्त नहीं किए थे । इसके विपरीत, तथापि, अभियुक्त व्यक्तियों ने घातक आयुधों का प्रयोग किया था । यह न्यायालय विचारण न्यायालय की उक्त मताभिव्यक्ति को सही नहीं पाता है । रामरूप **उर्फ** रूपा को पहुंची क्षतियां धारदार आयुध से पहुंची हैं । अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंचीं क्षतियों को स्पष्ट न करने से इस बारे में संदेह उत्पन्न होता है कि क्या अभियोजन पक्ष घटना की वास्तविक उत्पत्ति को अभिलेख पर लाया है । निर्विवाद रूप से, जैसाकि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, शिकायतकर्ता पक्ष के विरुद्ध भी अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंची क्षतियों के लिए एक प्रतिमामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था । अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा ली गई प्रतिरक्षा यह है कि जब वे पुलिस थाने से वापस आ रहे थे, शिकायतकर्ता पक्ष ने ही उन पर हमला करना शुरू किया था जिसके परिणामस्वरूप खुली लड़ाई हुई थी । उनका

आगे पक्षकथन यह है कि उक्त खुली लड़ाई में दोनों पक्षों के व्यक्तियों को क्षतियां पहुंची थीं । उक्त खुली लड़ाई में पहुंची क्षति के परिणामस्वरूप मदन की मृत्यु हो गई थी । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से यह स्पष्ट नहीं है कि क्या विधिविरुद्ध जमाव का सामान्य उद्देश्य मृतक की हत्या करने का था या नहीं । संपूर्ण घटना वर्तमान घटना घटने के दिन से एक दिन पूर्व घटी घटना अर्थात् शिकायतकर्ता पक्ष की भैंस द्वारा अभियुक्त जालिम सिंह द्वारा बनाई गई तापड़िया को नष्ट करने के कारण उद्भूत हुई थी । यह पूरी तरह संभव है कि अभियुक्त व्यक्तियों का शिकायतकर्ता पक्ष के किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित करने का आशय नहीं था । यह संभव है कि अभियुक्त व्यक्ति उनके पक्ष की भैंस के कारण अभियुक्त जालिम सिंह की तापड़िया नष्ट करने को लेकर शिकायतकर्ता पक्ष को केवल सबक सिखाने के लिए जमा हुए थे । अतः इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अपीलार्थी संदेह के फायदे के हकदार हैं । भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि संधार्य नहीं होगी । अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करने में असफल रहा है कि विधिविरुद्ध जमाव का आशय मृतक की मृत्यु कारित करने का था । इसलिए इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग 2 के अंतर्गत आएगा । (पैरा 19, 20, 23 से 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2023]	2023 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 262 : **नंद लाल और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ;	6, 21
[2006]	(2006) 9 एस. सी. सी. 57 : **नागरतनम और अन्य** बनाम **राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक** ;	21
[2003]	(2003) 9 एस. सी. सी. 426 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मिश्रीलाल (मृत) और अन्य** ;	21

[1991]	(1991) 2 (सप्ली.) एस. सी. सी. 396 : **राजस्थान राज्य** बनाम **माधो और एक अन्य** ;	21
[1976]	(1976) 4 एस. सी. सी. 394 : **लक्ष्मी सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** ;	20
[1964]	[1964] 8 एस. सी. आर. 133 : **मसाल्ती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ।	13, 15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2021 की दांडिक अपील सं. 524 (इसके साथ 2023 की दांडिक अपील सं. 3416).

2005 की दांडिक अपील सं. 243 और 260 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर के तारीख 14 मार्च, 2018 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री ए. सिराजुद्दीन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, ऋषि मल्होत्रा और (सुश्री) एन. अन्नापूर्णी

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री धीरेन्द्र सिंह परमार, अपर महाधिवक्ता, अभिमन्यु सिंह, यशराज सिंह बुंदेला, सुशील तोमर, पवन (सुश्री) ज्योति वर्मा और भगवानजी ठाकुर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बी. आर. गवई ने दिया ।

न्या. गवई – 2022 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 1718 से उद्भूत अपील की इजाजत दी गई ।

2. इन अपीलों में 2005 की दांडिक अपील सं. 243 और 260 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 14 मार्च, 2018 को पारित किए गए उस एक ही निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने 2002 के सेशन विचारण सं. 9 में प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) (जिसे इसमें इसके पश्चात् "विचारण न्यायालय" कहा गया है) द्वारा

अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करते हुए और उन्हें भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् “भारतीय दंड संहिता” कहा गया है) की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आजीवन कारावास भुगतने, भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 326 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए सात वर्ष का कठोर कारावास भुगतने, भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 324 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए छह माह का कठोर कारावास भुगतने, भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 323 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए तीन माह का कठोर कारावास भुगतने और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए तीन माह का कठोर कारावास भुगतने के लिए दंडादिष्ट करते हुए तारीख 30 मार्च, 2005 को पारित किए गए निर्णय और आदेश को कायम रखा ।

3. अनावश्यक ब्यौरों को छोड़कर, वे तथ्य जिनके आधार पर ये अपीलें उद्भूत हुई हैं निम्नलिखित हैं –

3.1 अभियोजन का यह पक्षकथन है कि अपीलार्थी जालिम सिंह ने गांव के रास्ते पर पशुओं के प्रयोग के लिए एक छप्पर (तापड़िया) का निर्माण किया था । चूंकि शिकायतकर्ता पक्ष की एक भैंस द्वारा उक्त छप्पर (तापड़िया) को ध्वस्त कर दिया गया था, इसलिए अपीलार्थी जालिम सिंह ने लाठी से उस भैंस की पिटाई की थी और उस भैंस को भगा दिया था । उसके पश्चात्, अपीलार्थी जालिम सिंह, राम सेवक **उर्फ** सेवक, राम लखन **उर्फ** लखन, रामरूप **उर्फ** रूपा, राम सहाय, परशुराम (2021 की दांडिक अपील सं. 524 में अपीलार्थी) और मंगल सिंह चिरोंजी (अभि. सा. 6) के मकान पर आए । यह देखकर चिरोंजी (अभि. सा. 6) डर के मारे मकान से भाग गया । उसके पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों ने दरवाजा तोड़ा और उसके मकान में घुस गए । अभियोजन का यह पक्षकथन है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मदन, लीलाबाई और कैलाश को पकड़ा और पिटाई की । उसके पश्चात्, सभी अभियुक्त व्यक्ति वहां से भाग गए । जब चिरोंजी (अभि. सा. 6) अपने मकान पर वापस आया, तो उसे घटना के बारे में सूचित किया गया ।

3.2 अभियोजन का यह पक्षकथन है कि तारीख 6 अक्तूबर, 2006 को 9.15 बजे पूर्वाह्न में शिकायतकर्ता पक्षकार से चिरोंजी (अभि. सा. 6), मदन (मृतक), रघुवीर, पतिराम (अभि. सा. 13), लीलाबाई (जिसकी विचारण के लंबित रहने के दौरान स्वाभाविक मृत्यु हो गई थी), रामहेत (अभि. सा. 12), ज्ञानी (अभि. सा. 14) और कैलाश (अभि. सा. 15) एक ट्रैक्टर पर शिकायत दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने जा रहे थे, तब अभियुक्त व्यक्तियों ने घातक आयुधों जैसे बरछी, तलवार, भाला, लाठी और देसी बम्ब (हथगोला) से लैस होकर उनको क्षति पहुंचाने के लिए उनका रास्ता रोक लिया ।

3.3 विपदग्रस्तों का रास्ता रोकने के पश्चात् राम लखन, जो एक बरछी लिए हुए था, ने इसे मदन की छाती पर बाईं तरफ घोंप दिया, जिसके परिणामस्वरूप मदन नीचे गिरकर बेहोश हो गया ; उसके पश्चात् राम सेवक **उर्फ** सेवक, जो एक गुप्ती लिए हुए था, शिकायतकर्ता को उसकी धड़ (बखा) की दाईं तरफ क्षतियां कारित कीं और उसके सिर पर एक और प्रहार किया ; और उसके पश्चात् रामरूप **उर्फ** रूपा, जो एक तलवार लिए हुए था, ने शिकायतकर्ता को उसके कंधे पर क्षति कारित की । इस अपील में अपीलार्थियों सहित अन्य अभियुक्त व्यक्तियों ने, जो घातक आयुधों से लैस थे, गंभीर क्षतियां कारित कीं ।

3.4 मूल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भारतीय दंड संहिता की धारा 307, 323, 452, 147, 148 और 149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए रजिस्ट्रीकृत की गई थी । तथापि, मदन की मृत्यु हो जाने पर इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध में संपरिवर्तित किया गया ।

3.5 अभियुक्त व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, कोलारास के न्यायालय में आरोप पत्र फाइल किया गया । चूंकि मामला अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए मामले को तारीख 10 जनवरी, 2002 को प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, शिवपुरी के न्यायालय को सुपुर्द किया गया ।

3.6 विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त व्यक्तियों (कुल मिलाकर नौ) ने उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से यह कहते हुए इनकार किया कि उन्हें एक भूमि विवाद के कारण मिथ्या रूप से फंसाया गया है । प्रतिरक्षा पक्ष ने दो साक्षियों की परीक्षा की और अभियोजन पक्ष ने इक्कीस साक्षियों की परीक्षा की । इक्कीस अभियोजन साक्षियों में से चिरोंजी (अभि. सा. 6), रामहेत (अभि. सा. 12), पतिराम (अभि. सा. 13), ज्ञानी (अभि. सा. 14) और कैलाश (अभि. सा. 15) क्षतिग्रस्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे ।

3.7 उसके पश्चात् विचारण न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध विरचित आरोपों के संबंध में अपने विचार के लिए पांच विवाद्यक विरचित किए । विचारण न्यायालय ने तारीख 30 मार्च, 2005 के निर्णय द्वारा अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से साबित होता है कि अभियुक्त व्यक्तियों परशुराम, राम सहाय, मंगल सिंह, राम लखन, रामरूप **उर्फ** रूपा, राम सेवक **उर्फ** सेवक और जालिम सिंह ने घटना की तारीख को एक विधिविरुद्ध जमाव का गठन किया और उसके पश्चात् उन्होंने शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों पर घातक आयुधों का प्रयोग करके गंभीर हमला किया और तद्द्वारा अपने विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य आशय को अग्रसर करने में उनमें से एक की हत्या की गई । ऊपर नामित सात अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302, धारा 149 के साथ पठित धारा 326, धारा 149 के साथ पठित धारा 324, धारा 149 के साथ पठित धारा 323, धारा 147 और धारा 148 के अधीन आरोपों का दोषी अभिनिर्धारित किया गया और शेष दो अभियुक्तों अर्थात् दीवान सिंह और सियाराम को आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया ।

3.8 परिणामत:, विचारण न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों को पूर्वोक्त अनुसार दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । अभियुक्तों को दिए गए सभी दंडादेश साथ-साथ चलने थे ।

3.9 विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर अभियुक्तों (परशुराम और अन्य) ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2005 की दांडिक अपील सं. 243 और अभियुक्त जालिम सिंह ने 2005 की दांडिक अपील सं. 260 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 14 मार्च, 2018 के एक ही आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा दोनों दांडिक अपीलों को खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय द्वारा यथाअभिलिखित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश की अभिपुष्टि की । इससे व्यथित होकर, अभियुक्त परशुराम और जालिम सिंह द्वारा ये अपीलें फाइल की गई हैं ।

4. हमने 2021 की दांडिक अपील सं. 524 में अपीलार्थी-परशुराम की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री ऋषि मल्होत्रा, 2022 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 1718 से उद्भूत अपील में अपीलार्थी-जालिम सिंह की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री ए. सिराजुद्दीन और प्रत्यर्थी-मध्य प्रदेश राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अभिमन्यु सिंह को सुना ।

5. श्री मल्होत्रा ने दलील दी कि उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय दोनों ने अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करके गंभीर गलती की है । उन्होंने दलील दी कि अभियोजन पक्ष इस अपील में अपीलार्थियों की किसी विनिर्दिष्ट भूमिका को बताने में असफल रहा था । इसके अभाव में, उन्होंने दलील दी कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अभिलिखित दोषसिद्धि मान्य नहीं होगी । विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि वर्तमान अपीलार्थी परशुराम पर अभ्यारोपित भूमिका केवल यह थी कि वह लाठी पकड़े हुए था और इसलिए अपीलार्थी परशुराम पर ऐसी कोई क्षति पहुंचाने का अभ्यारोपण नहीं किया जा सकता, जिससे मृतक की मृत्यु हुई थी । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अभियुक्त व्यक्तियों में से दो को, जिन पर हथगोले लिए होने की भूमिका अभ्यारोपित की गई थी, विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था । इसलिए, वर्तमान अपीलार्थियों की दोषसिद्धि संधार्य नहीं थी ।

6. श्री मल्होत्रा ने दलील दी कि कई अभियुक्त व्यक्तियों को क्षतियां पहुंची थीं । अभियोजन पक्ष द्वारा इन क्षतियों को कतई स्पष्ट नहीं किया गया था । उन्होंने दलील दी कि अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा

शिकायतकर्ता पक्ष के विरुद्ध उसी घटना से उद्भूत जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी वह समय के हिसाब से पहले थी । विद्वान् काउंसेल ने **नंद लाल और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक हाल ही निर्णय का अवलंब लेते हुए दलील दी कि क्षतियों को स्पष्ट न करना अभियोजन पक्ष के लिए घातक है और अपीलार्थी ऐसी क्षतियों को स्पष्ट न करने के आधार पर दोषमुक्त किए जाने के हकदार हैं ।

7. 2022 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 1718 से उद्भूत अपील में अपीलार्थी-जालिम सिंह की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री सिराजुद्दीन ने भी इसी प्रकार की दलीलें दीं ।

8. इसके विपरीत, श्री सिंह ने दलील दी कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने समवर्ती रूप से पाया था कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है । उन्होंने दलील दी कि चूंकि अपीलार्थी विधिविरुद्ध जमाव का भाग थे, इसलिए अभियोजन पक्ष के लिए उनमें से प्रत्येक की विनिर्दिष्ट भूमिका का उल्लेख करना आवश्यक नहीं था । यह दलील दी गई कि विधिविरुद्ध जमाव का उद्देश्य शिकायतकर्ता पक्ष के सदस्यों की हत्या करना था और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि के निष्कर्ष, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी कि मृतक को पहुंची घातक आयुधों से कारित क्षतियां महत्वपूर्ण अंगों पर थीं ।

9. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों की सहायता से हमने अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री का परिशीलन किया है ।

10. चिरोंजी (अभि. सा. 6) प्रथम इत्तिलाकर्ता है । उसने उस घटना के बारे में बताया जो वर्तमान घटना घटने के एक दिन पूर्व घटी थी । उसने कहा कि अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा मदन, लीला (लीलाबाई होगा) और कमलेश (कैलाश होगा) पर हमला करने के पश्चात् जब वे शिकायत

---

[1] 2023 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 262.

दर्ज कराने के लिए एक ट्रैक्टर पर पुलिस थाने जा रहे थे, तब उन्हें ताक में बैठे मंगल, रूपा, सेवक, राम सहाय, परशुराम, लखन, जालिम, दीवान और सिया तथा चार-पांच अन्य व्यक्तियों द्वारा रोका गया । उन सभी ने उनका ट्रैक्टर रोका और उसके पश्चात् हथगोले फेंके । उसने यह भी कथन किया कि सेवक ने उसकी छाती पर गुप्ती से प्रहार किया और उसके सिर पर भी गुप्ती मारी । उसने कथन किया कि रूपा ने उसके कंधे पर तलवार से प्रहार किया । उसने कथन किया कि मदन की छाती में लखन द्वारा बरछी से प्रहार किया गया था, जिस पर वह बेहोश हो गया । उसने कथन किया कि उसके पश्चात् वे पुलिस थाने गए । मदन की 10.00 बजे पूर्वाह्न में मृत्यु हो गई । उसके साक्ष्य की संपुष्टि रामहेत (अभि. सा. 12) द्वारा की गई है ।

11. डा. एस. के. मजेजी (अभि. सा. 4) ने मृतक की शव-परीक्षा की । मृतक को पहुंची क्षतियां इस प्रकार हैं :–

> "क्षति सं. 1 : छाती पर बाईं तरफ 1 इंच x ½ इंच x फेफड़े की गहराई तक विधारित घाव । इस क्षति के नीचे की त्वचा और मांसपेशियां तथा मृतक का बायां फेफड़ा इस क्षति के कारण फट गया था । फटे हुए फेफड़े का आकार 1 इंच x 2 इंच x 2 इंच था ;
>
> क्षति सं. 2 : पीठ के मध्य में 4 इंच x 1 इंच का छिला हुआ घाव ; और
>
> क्षति सं. 3 : बाईं भुजा पर ½ इंच x ½ इंच का छिला हुआ घाव ।"

12. अपीलार्थियों की ओर से यह आग्रह किए जाने की ईप्सा की गई कि चिरोंजी (अभि. सा. 6) और रामहेत (अभि. सा. 12) के परिसाक्ष्य विश्वसनीय नहीं हैं क्योंकि उनके साक्ष्य में तात्विक विरोधाभास हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि चिरोंजी (अभि. सा. 6) और रामहेत (अभि. सा. 12) के परिसाक्ष्य में कतिपय असंगतियां हैं । तथापि, यह उल्लेखनीय है कि ये साक्षी अनपढ़ ग्रामीण हैं और उनसे एक दूसरे के समरूप बारीकी से ब्यौरा देने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती ।

13. भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि के संबंध में विधि की **मसाल्ती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले शास्त्रीय निर्णय में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ द्वारा संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से चर्चा की गई है, जिसमें इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था :–

> "17. ….. ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जिसके बारे में विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होने का अभिकथन किया गया है, जो साबित किया जाना चाहिए वह यह है कि वह जमाव का गठन करने वाले व्यक्तियों में से एक था और उसने जमाव के अन्य सदस्यों के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 141 में यथापरिभाषित सामान्य उद्देश्य को मन में ग्रहण किया था । धारा 142 में उपबंधित है कि जो कोई उन तथ्यों से परिचित होते हुए, जो किसी जमाव को विधिविरुद्ध जमाव बनाते हैं, उस जमाव में साशय सम्मिलित होता है, या उसमें बना रहता है, यह कहा जाता है कि वह विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य है । दूसरे शब्दों में, धारा 141 के पांच खंडों में विनिर्दिष्ट एक या अधिक सामान्य उद्देश्यों से प्रेरित होकर और मन में ग्रहण करते हुए पांच या अधिक व्यक्तियों का जमाव एक विधिविरुद्ध जमाव है । ऐसे मामले में अवधारण करने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या जमाव में पांच या अधिक सदस्य थे और क्या उक्त व्यक्तियों ने धारा 141 द्वारा यथाविनिर्दिष्ट एक या अधिक सामान्य उद्देश्य को मन में ग्रहण किया था या नहीं । इस प्रश्न का अवधारण करते समय इस बात पर विचार करना सुसंगत हो जाता है कि क्या जमाव में कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो मात्र निष्क्रिय दर्शक थे और जमाव के सामान्य उद्देश्य को ग्रहण करने के आशय के बिना बेवजह जिज्ञासावश जमाव में सम्मिलित हुए थे । इसी संदर्भ में बालाद्दीन वाले मामले में [ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 181] इस न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों का महत्व हो जाता है ; अन्यथा, विधि की दृष्टि

---

[1] [1964] 8 एस. सी. आर. 133.

से यह कहना सही नहीं होगा कि इससे पूर्व कि किसी व्यक्ति को विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होना अभिनिर्धारित किया जाए, अवश्य यह दर्शित किया जाना चाहिए कि उसने जमाव के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में कोई अवैध स्पष्ट कृत्य कारित किया था या कोई अवैध लोप करने का दोषी था । वास्तव में, धारा 149 में यह स्पष्ट किया गया है कि यदि विधिविरुद्ध जमाव के किसी सदस्य द्वारा उस जमाव के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में अपराध किया जाता है, या ऐसा कोई अपराध किया जाता है जिसका किया जाना उस जमाव के सदस्य उस उद्देश्य को अग्रसर करने में संभाव्य जानते थे, तो हर व्यक्ति, जो उस अपराध के किए जाने के समय उस जमाव का सदस्य है, उस अपराध का दोषी होगा ; और इससे स्पष्ट रूप से यह सिद्धांत निकलता है कि धारा 149 द्वारा विहित दंड प्रतिनिधिक स्वरूप का है और सदैव इस आधार पर अग्रसर नहीं होता है कि अपराध वास्तव में विधिविरुद्ध जमाव के प्रत्येक सदस्य द्वारा कारित किया गया हो ......।"

14. इस प्रकार, स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विधिविरुद्ध जमाव का गठन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 149 की सहायता से दोषसिद्ध करने के लिए सक्रिय भूमिका निभानी आवश्यक नहीं है । अभियोजन पक्ष द्वारा जो सिद्ध किया जाना चाहिए वह यह है कि वह व्यक्ति विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होना चाहिए अर्थात् वह जमाव का गठन करने वाले व्यक्तियों में से एक होना चाहिए और उसने जमाव के अन्य सदस्यों के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के अधीन यथापरिभाषित सामान्य उद्देश्य को ग्रहण किया था । जैसाकि भारतीय दंड संहिता की धारा 142 में उपबंधित किया गया है, जो कोई उन तथ्यों से परिचित होते हुए, जो किसी जमाव को विधिविरुद्ध जमाव बनाते हैं, उस जमाव में साशय सम्मिलित होता है, या उसमें बना रहता है, वह विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य है, यह कहा जाता है ।

15. निर्विवाद रूप से, चिरोंजी (अभि. सा. 6) और रामहेत (अभि. सा. 12) के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलार्थी विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य थे । इसमें कोई संदेह नहीं है कि मृतक मदन पर हमला करने में वर्तमान अपीलार्थियों की विनिर्दिष्ट भूमिका का उल्लेख नहीं किया गया है । तथापि, चूंकि अपीलार्थी विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य थे, इसलिए **मसाल्ती** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे व्यक्ति ने, उसे दोषसिद्ध करने के लिए, अवश्य वास्तव में मृतक पर हमला किया हो ।

16. यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् हमारे द्वारा जिस प्रश्न का उत्तर देना रहता है, वह इस बारे में है कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि मान्य है या नहीं ।

17. अपीलार्थियों और अन्य अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा ली गई प्रतिरक्षा यह थी कि वास्तव में अभियुक्त व्यक्तियों ने शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा किए गए आक्रमण की बाबत पहले शिकायत दर्ज कराई थी । उनकी प्रतिरक्षा में यह आया है कि शिकायत दर्ज कराने के पश्चात् जब वे पुलिस थाने से वापस आ रहे थे, तब शिकायतकर्ता पक्ष एक ट्रैक्टर पर आया था और अभियुक्त व्यक्तियों पर हमला किया था । उनकी यह दलील है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने स्वयं को बचाने की कोशिश की थी जिसके परिणामस्वरूप खुली लड़ाई में दोनों पक्षों के सदस्यों को क्षतियां पहुंची थीं और दुर्भाग्यवश मृतक मदन लाल को पहुंची क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी ।

18. यह उल्लेखनीय है कि प्रतिरक्षा पक्ष ने भी दो साक्षियों की परीक्षा की थी । राम किशन पांडेय (प्रति. सा. 1) वह पुलिस कांस्टेबल है जिसने अभियुक्त व्यक्तियों में से एक द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को रजिस्ट्रीकृत किया था । डा. निसार अहमद (प्रति. सा. 2), चिकित्सा अधिकारी, शिवपुरी जिसने अभियुक्त राम सेवक **उर्फ** सेवक, राम लखन और रामरूप **उर्फ** रूपा को पहुंचीं क्षतियों के बारे में

अभिसाक्ष्य दिया था । अभियुक्त राम सेवक **उर्फ** सेवक को पहुंची क्षतियां इस प्रकार हैं :-

"(i) माथे पर सामने हड्डी की गहराई तक 7 सें. मी. x 1 सें. मी. का विदीर्ण घाव ;

(ii) सिर के पीछे और दाईं तरफ 3 सें. मी. x 1 सें. मी. का फटा हुआ घाव हड्डी तक गहरा था ;

(iii) बाएं कंधे पर मांसपेशी की गहराई के पश्च 4 सें. मी. x 2 सें. मी. का विदीर्ण घाव था ;

(iv) बाएं प्रबाहु के बाहरी और ऊपरी भाग पर 1 x 1 सें. मी./2 x 1 सें. मी./2 सें. मी. का विदीर्ण घाव ;

(v) 1 x 1 सें. मी./2 x 1 सें. मी. का विदीर्ण घाव बाएं अंगूठे पर अवस्थित था ;

(vi) ऊपरी बाईं प्रबाहु में छितरी हुई सूजन;

(vii) दाईं मध्य मलिकास्थि पर सूजन और दबाने पर दर्द ;

(viii) दाईं जांघ में छितरी हुई सूजन ।

अभियुक्त राम लखन को पहुंचीं क्षतियां इस प्रकार हैं:-

(i) बाईं टांग के पीछे नस पर छितरी हुई सूजन ।

अभियुक्त रामरूप **उर्फ** रूपा को पहुंचीं क्षतियां इस प्रकार हैं:

(i) सिर के पार्श्विक दाएं भाग में 6 सें. मी. x 1 सें. मी. का त्वचा की गहराई तक चटका हुआ घाव ;

(ii) दाएं प्रबाहु के निचले भाग में सूजन और विकृति;

(iii) बाईं स्कंधास्थि में सूजन और दबाव डालने पर दर्द ;

(iv) दाएं घुटने के ऊपर छितरी हुई सूजन ।"

19. यद्यपि विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता पक्ष के विरुद्ध

भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 341, 294, 147, 148 और 149 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए रजिस्ट्रीकृत किए गए मामले के तथ्यों को निर्दिष्ट किया, तो भी विचारण न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि शिकायतकर्ता पक्ष द्‌वारा अभियुक्त व्यक्तियों पर हमला करने में कोई घातक आयुध प्रयुक्त नहीं किए थे । इसके विपरीत, तथापि, अभियुक्त व्यक्तियों ने घातक आयुधों का प्रयोग किया था ।

20. हम विचारण न्यायालय की उक्त मताभिव्यक्ति को सही नहीं पाते हैं । रामरूप **उर्फ** रूपा को पहुंची क्षतियां धारदार आयुध से पहुंची हैं । **लक्ष्मी सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्‌वारा की गई निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट करना घिसी-पिटी बात होगी :–

> "12. .... हमें यह प्रतीत होता है कि हत्या के मामले में लगभग घटना के समय पर या झगड़े के दौरान अभियुक्त को पहुंची क्षतियों को स्पष्ट न करना एक अति महत्वपूर्ण परिस्थिति है जिससे न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकता है :–
>
> > '(1) यह कि अभियोजन पक्ष ने घटना की उत्पत्ति और मूल को छिपाया है और इस प्रकार सही वृत्तांत प्रस्तुत नहीं किया है ;
> >
> > (2) यह कि वे साक्षी जिन्होंने अभियुक्त के शरीर पर क्षतियां मौजूद होने की बात से इनकार किया है, एक अति तात्विक बिंदु पर झूठ बोल रहे हैं और इसलिए उनका साक्ष्य अविश्वसनीय है ;
> >
> > (3) यह कि यदि प्रतिरक्षा पक्ष का ऐसा वृत्तांत है जिसमें अभियुक्त के शरीर पर क्षतियां होने की बात स्पष्ट की गई है तो यह अधिसंभाव्य हो जाता है जिससे कि अभियोजन के पक्षकथन पर संदेह किया जा सके ।'

---

[1] (1976) 4 एस. सी. सी. 394.

अभियुक्त के शरीर पर क्षतियों को स्पष्ट करने में अभियोजन पक्ष की ओर से किए गए लोप का वहां और अधिक महत्व हो जाता है जहां साक्ष्य में हितबद्ध या विद्वेषी साक्षियों का साक्ष्य समाविष्ट हो या जहां प्रतिरक्षा पक्ष ऐसा वृत्तांत देता है जो संभाव्यता की दृष्टि से अभियोजन पक्ष के वृत्तांत का प्रतिस्पर्धी है । प्रस्तुत मामले में, जब यह अभिनिर्धारित किया गया है, जैसाकि अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए, कि अपीलार्थी दशरथ सिंह को गंभीर क्षतियां पहुंची थीं जिन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है तब न्यायालय के लिए अभि. सा. 1 से 4 और 6 के साक्ष्य पर विश्वास करना कठिन होगा, विशिष्ट रूप से जब इन साक्षियों में से कुछ ने यह कहते हुए झूठ बोला है कि उन्होंने अभियुक्त के शरीर पर कोई क्षति नहीं देखी थी । इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि न तो सेशन न्यायाधीश और न ही उच्च न्यायालय ने अभियोजन के पक्षकथन में प्रकट होने वाली इस महत्वपूर्ण खामी या कमी पर सम्यक् विचार नहीं किया है । हम यह भी कहना चाहेंगे कि जैसाकि गुजरात राज्य **बनाम** बाई फातिमा [(1975) 2 एस. सी. सी. 7 = 1975 एस. सी. सी. (क्रि.) 384] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, ऐसे मामले हो सकते हैं जहां अभियोजन पक्ष द्वारा क्षतियों को स्पष्ट न करने से अभियोजन के पक्षकथन पर प्रभाव न पड़े । यह सिद्धांत स्पष्ट रूप से उन मामलों पर लागू होगा जहां अभियुक्त को पहुंची क्षतियां छुटपुट और सरसरी हैं या जहां साक्ष्य इतना स्पष्ट और सटीक, इतना स्वतंत्र और अहितबद्ध, इतना अधिसंभाव्य, संगत और भरोसेमंद है कि इससे अभियोजन पक्ष द्वारा क्षतियों को स्पष्ट करने में किए गए लोप का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । तथापि, वर्तमान मामला निश्चित रूप से ऐसा मामला नहीं है और इसलिए उच्च न्यायालय ने अविश्वसनीय आधारों पर अभियोजन के पक्षकथन में इस गंभीर कमी को अस्वीकार करके गलती की है ।"

21. **राजस्थान राज्य** बनाम **माधो और एक अन्य**[1], **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मिश्रीलाल (मृत) और अन्य**[2], **नागरतनम और अन्य** बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक**[3] और हाल ही में **नंद लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा क्षतियों को स्पष्ट न करने के संबंध में इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया है ।

22. निर्विवाद रूप से, वर्तमान मामले में भी साक्षी हितबद्ध साक्षी हैं । तीन अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंची क्षतियों को कतई स्पष्ट नहीं किया गया है । विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया है ।

23. अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंचीं क्षतियों को स्पष्ट न करने से इस बारे में संदेह उत्पन्न होता है कि क्या अभियोजन पक्ष घटना की वास्तविक उत्पत्ति को अभिलेख पर लाया है । निर्विवाद रूप से, जैसाकि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, शिकायतकर्ता पक्ष के विरुद्ध भी अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंची क्षतियों के लिए एक प्रतिमामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था ।

24. अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा ली गई प्रतिरक्षा यह है कि जब वे पुलिस थाने से वापस आ रहे थे, शिकायतकर्ता पक्ष ने ही उन पर हमला करना शुरू किया था जिसके परिणामस्वरूप खुली लड़ाई हुई थी । उनका आगे पक्षकथन यह है कि उक्त खुली लड़ाई में दोनों पक्षों के व्यक्तियों को क्षतियां पहुंची थीं । उक्त खुली लड़ाई में पहुंची क्षति के परिणामस्वरूप मदन की मृत्यु हो गई थी ।

25. अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से यह स्पष्ट नहीं है कि क्या विधिविरुद्ध जमाव का सामान्य उद्देश्य मृतक की हत्या करने का था या नहीं । संपूर्ण घटना वर्तमान घटना घटने के दिन से एक दिन पूर्व घटी घटना अर्थात् शिकायतकर्ता पक्ष की भैंस द्वारा अभियुक्त जालिम

---

[1] (1991) 2 (सप्ली.) एस. सी. सी. 396.

[2] (2003) 9 एस. सी. सी. 426.

[3] (2006) 9 एस. सी. सी. 57.

सिंह द्वारा बनाई गई तापड़िया को नष्ट करने के कारण उद्भूत हुई थी । यह पूरी तरह संभव है कि अभियुक्त व्यक्तियों का शिकायतकर्ता पक्ष के किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित करने का आशय नहीं था । यह संभव है कि अभियुक्त व्यक्ति उनके पक्ष की भैंस के कारण अभियुक्त जालिम सिंह की तापड़िया नष्ट करने को लेकर शिकायतकर्ता पक्ष को केवल सबक सिखाने के लिए जमा हुए थे ।

26. अत: हमारा सुविचारित मत है कि अपीलार्थी संदेह के फायदे के हकदार हैं । भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि संधार्य नहीं होगी । अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करने में असफल रहा है कि विधिविरुद्ध जमाव का आशय मृतक की मृत्यु कारित करने का था । इसलिए हमारा यह निष्कर्ष है कि यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग 2 के अंतर्गत आएगा ।

27. परिणामत:, इन अपीलों को निम्नलिखित निदेशों के साथ निपटारा किया जाता है :–

(i) भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग 2 में परिवर्तित किया जाता है ;

(ii) अपीलार्थियों को सात वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जाता है ।

28. लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई है, का उपरोक्त निबंधनों के अनुसार निपटारा हो जाएगा ।

अपीलें भागत: मंजूर की गईं ।

जस.

[2024] 1 उम. नि. प. 147

शदाक्षरी

बनाम

कर्नाटक राज्य और एक अन्य

[2024 की दांडिक अपील सं. 256]

17 जनवरी, 2024

न्यायमूर्ति अभय एस. ओका और न्यायमूर्ति उज्जल भूयां

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 197 – लोक सेवकों का अभियोजन – मंजूरी – अपीलार्थी-शिकायतकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध लोक सेवक के रूप में अपनी पदीय हैसियत का दुरुपयोग करके मृत व्यक्ति के नाम में संपत्ति के जाली दस्तावेज तैयार करने का अभिकथन करते हुए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किया जाना – प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा शिकायत को अभिखंडित करने के लिए धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय में आवेदन किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा आवेदन को खारिज किया जाना और कोई प्रतिकूल रिपोर्ट फाइल होने की दशा में उसे उपचार की ईप्सा करने की स्वतंत्रता दिया जाना – अन्वेषण के पश्चात् उसके विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जाना – प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा शिकायत और आरोप पत्र को अभिखंडित किए जाने की ईप्सा करते हुए पुनः उच्च न्यायालय में समावेदन किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी के अभाव में शिकायत और आरोप पत्र दोनों को अभिखंडित किया जाना – औचित्य – धारा 197 किसी लोक सेवक को सेवा में रहते हुए किए गए प्रत्येक कार्य या लोप के लिए सुरक्षा कवच प्रदान नहीं करती है और यह केवल उन कार्यों या लोपों तक निर्बंधित है जो लोक सेवक द्वारा पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए हों और लोक सेवक के रूप में अपनी पदीय स्थिति का दुरुपयोग करके शासकीय दस्तावेज गढ़ना किसी लोक सेवक के पदीय कर्तव्य का भाग नहीं कहा जा सकता और पदीय स्थिति का दुरुपयोग करके ऐसे

शासकीय दस्तावेज गढ़े गए हैं या नहीं, यह विचारण का विषय है इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा शिकायत के साथ-साथ आरोप पत्र को भी अभिखंडित करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता और उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करना उचित होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता के रूप में एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट यह अभिकथन करते हुए दर्ज कराई कि प्रत्यर्थी सं. 2 और एक अन्य व्यक्ति मृत व्यक्ति के नाम में संपत्ति के दस्तावेज जैसे मृत्यु प्रमाणपत्र, अपीलार्थी की भूमि के मूल उत्तराधिकारी की कुटुंब वंशावली आदि अवैध अभिलाभ के लिए इस तथ्य का पता होने के बावजूद कि वे जाली दस्तावेज हैं, अनियमित रूप से तैयार कर रहे हैं । इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 149 और इसकी धारा 34 के साथ पठित धारा 409, 419, 420, 423, 465, 466, 467, 468, 471 और 473 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2 कर्नाटक राज्य के हसन जिले में ग्राम लेखाकार के रूप में कार्यरत है । प्रत्यर्थी सं. 2 ने उक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने के लिए कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन आवेदन फाइल करके प्रथम इत्तिला रिपोर्ट/शिकायत को अभिखंडित किए जाने का निवेदन किया । उच्च न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध जीवित व्यक्ति का मृत्यु प्रमाणपत्र बनाने के संबंध में विनिर्दिष्ट और गंभीर अभिकथन हैं और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुशीलन से अन्वेषण का मामला बनता है और ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हस्तक्षेप करना बहुत जल्दबाजी होगी । उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप नहीं किया यद्यपि प्रत्यर्थी सं. 2 को कोई प्रतिकूल रिपोर्ट फाइल होने की स्थिति में विधिक उपचार की ईप्सा करने की स्वतंत्रता दी । अन्वेषण अधिकारी द्वारा विचारण न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने शिकायत और आरोप पत्र को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन फाइल करके पुन: उच्च न्यायालय में समावेदन किया । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी सं. 2 एक लोक सेवक है और अभियोजन पक्ष के

अनुसार उसके विरुद्ध शिकायत किया गया अपराध एक लोक सेवक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए किया गया था । अन्वेषण अधिकारी ने प्रत्यर्थी सं. 2 को अभियोजित करने के लिए मंजूरी मांगी किंतु मंजूरी से इनकार कर दिया गया था । ऐसी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि मंजूरी देने से मना कर दिया गया था इसलिए एक लोक सेवक के विरुद्ध दांडिक अपराध के लिए अभियोजन जारी नहीं रह सकता । परिणामत:, उच्च न्यायालय द्वारा शिकायत, आरोप पत्र को अपास्त कर दिया गया । शिकायतकर्ता द्वारा व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 197 का संरक्षात्मक कवच किसी लोक सेवक के सेवा में रहते हुए किए गए प्रत्येक कार्य या लोप तक विस्तारित नहीं है । यह केवल उन कार्यों और लोपों तक निर्बंधित है जो लोक सेवकों द्वारा पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किए जाते हैं । यह प्रश्न कि क्या प्रत्यर्थी सं. 2 एक लोक सेवक के रूप में अपनी पदीय स्थिति का दुरुपयोग करके शासकीय दस्तावेजों को गढ़ने में अंतर्ग्रस्त था, एक विचारण का विषय है । निश्चित रूप से, यह दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है कि ऐसे दस्तावेजों का विनिर्माण या अभिलेख का गढ़ना किसी लोक सेवक के पदीय कर्तव्य का भाग नहीं हो सकता । ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय द्वारा शिकायत के साथ-साथ आरोप पत्र को पूरी तरह से अभिखंडित करना न्यायोचित नहीं था, विशेष रूप से जब प्रत्यर्थी सं. 2 के अतिरिक्त दो अन्य अभियुक्त हैं । मामले का एक और पहलू है । प्रत्यर्थी सं. 2 ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन पूर्ववर्ती कार्यवाहियों में शिकायत को असफल रूप से चुनौती दी थी । यद्यपि उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को शिकायत दर्ज करने के पश्चात् फाइल की गई किसी प्रतिकूल रिपोर्ट को चुनौती देने की स्वतंत्रता दी गई थी किंतु चुनौती को आरोप पत्र तक सीमित रखने के बजाय प्रतिवादी सं. 2 ने शिकायत को भी चुनौती दी जो वह नहीं कर सकता था । ऐसी स्थिति में, इस न्यायालय का यह नि:संकोच मत है कि उच्च न्यायालय ने शिकायत के साथ-साथ आरोप पत्र को पूरी तरह से अभिखंडित करके गलती की थी । (पैरा 23, 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2023]	2023 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 900 : **ए. श्रीनिवासुलु** बनाम **राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक** ;	24
[2020]	(2020) 7 एस. सी. सी. 695 : **डी. देवराज** बनाम **ओबेस सेंडर्स हुसैन** ;	14, 22
[2014]	(2014) 1 एस. सी. सी. 1 : **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	5.1
[2004]	(2004) 8 एस. सी. सी. 40 : **उड़ीसा राज्य** बनाम **गणेश चंद्र ज्यू** ;	20, 22
[1997]	(1997) 5 एस. सी. सी. 326 : **शंभू नाथ मिश्रा** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ।	12, 21

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2024 की दांडिक अपील सं. 256.

2020 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 4998 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु द्वारा तारीख 25 नवंबर, 2020 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री सी. बी. गुरुराज, प्रकाश रंजन नायक, अनिमेष दुबे और टी. जी. रवि
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री डी. एल. चिदांदा, राहुल कौशिक, अनिल सी. निशानी, वी. मृणाल, कृष्ण एम. सिंह और राजीव कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति उज्जल भूयां ने दिया ।

न्या. भूयां – पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

2. इस अपील में 2020 के दांडिक आवेदन सं. 4998 (श्री मल्लिकार्जुन बनाम कर्नाटक राज्य) में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु द्वारा अपीलार्थी द्वारा दर्ज की गई तारीख 19 दिसंबर, 2016 की

शिकायत; 2018 के अपराध मामला सं. 116 में आरोप पत्र, जिसमें विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, बेलूर द्वारा उसमें तारीख 28 मार्च, 2018 को पारित आदेश भी सम्मिलित है, को अभिखंडित करते हुए तारीख 25 नवंबर, 2020 को पारित किए गए आदेश को चुनौती दी गई है ।

3. तथ्य बहुत ही सीमित दायरे में हैं । अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता के रूप में तारीख 19 दिसंबर, 2016 को एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (जिसे आक्षेपित आदेश में 'शिकायत' कहा गया है) यह अभिकथन करते हुए दर्ज कराई कि प्रत्यर्थी सं. 2 और एक अन्य व्यक्ति मृत व्यक्ति के नाम में संपत्ति के दस्तावेज जैसे मृत्यु प्रमाणपत्र, अपीलार्थी की भूमि के मूल उत्तराधिकारी की कुटुंब वंशावली आदि अवैध अभिलाभ के लिए इस तथ्य का पता होने के बावजूद कि वे जाली दस्तावेज हैं, अनियमित रूप से तैयार कर रहे हैं । उक्त प्रथम इत्तिला बेलूर के हलीबेदु, पुलिस थाना में प्राप्त हुई थी और इसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 149 और इसकी धारा 34 के साथ पठित धारा 409, 419, 420, 423, 465, 466, 467, 468, 471 और 473 के अधीन 2016 के अपराध सं. 323 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी सं. 2 कर्नाटक राज्य के हसन जिले के किरीगडालु सर्किल में ग्राम लेखाकार के रूप में कार्यरत है ।

5. प्रत्यर्थी सं. 2 ने उक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने के लिए कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु (संक्षेप में 'उच्च न्यायालय') के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में दंड प्रक्रिया संहिता) की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । इसे 2017 के दांडिक आवेदन सं. 9580 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया ।

5.1 उच्च न्यायालय ने तारीख 5 जनवरी, 2018 के अपने आदेश में उल्लेख किया कि अपीलार्थी का विनिर्दिष्ट पक्षकथन यह है कि चट्टनहल्ली गांव, हलेबीडु होबली, बेलूर तालुक, जिला हसन में स्थित सर्वेक्षण सं. 7/6 में एक एकड़ 13 गुंटा भूमि अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों की थी । इसे अभियुक्त सं. 1 को खेती के प्रयोजन के लिए दिया गया था । अभियुक्त सं. 1 ने अभियुक्त सं. 2 (इस

अपील में प्रत्यर्थी सं. 2) सहित राजस्व पदधारियों के साथ मिलीभगत करके प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में बहुत सारे नकली दस्तावेज तैयार किए । उच्च न्यायालय ने तारीख 5 जनवरी, 2018 के आदेश द्वारा यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध जीवित व्यक्ति का मृत्यु प्रमाणपत्र बनाने के संबंध में विनिर्दिष्ट और गंभीर अभिकथन हैं । यह मत व्यक्त किया गया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुशीलन से अन्वेषण का मामला बनता है और ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हस्तक्षेप करना बहुत जल्दबाजी होगी । **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले का उल्लेख करते हुए उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप नहीं किया यद्यपि प्रत्यर्थी सं. 2 को कोई प्रतिकूल रिपोर्ट फाइल होने की स्थिति में विधिक उपचार की ईप्सा करने की स्वतंत्रता दी ।

6. हलीबेडु पुलिस थाने के पुलिस उप निरीक्षक, जो अन्वेषण अधिकारी था, ने तारीख 20 मार्च, 2018 को अपर सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग) और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, बेलूर के न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसे 2018 के आरोप पत्र सं. 12 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । आरोप पत्र में निम्नलिखित व्यक्तियों को अभियुक्त के रूप में नामित किया गया है :–

i. अभियुक्त सं. 1 - रामेगौड़ा

ii. अभियुक्त सं. 2 - मल्लिकार्जुन (प्रत्यर्थी सं. 2)

iii. अभियुक्त सं. 3 - मंजूनाथ अरस

उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 471, 468, 467, 465, 420, 409, 466 और 423 के अधीन आरोपित किया गया है । आरोप पत्र में 31 साक्षियों के नामों का भी उल्लेख है ।

7. आरोप पत्र के अनुसार, साक्षी सं. 2 के मृत पति सोमशेखरप्पा ने अपने मृत छोटे भाई थुम्बेगौड़ा को लगभग 40-50 वर्ष पूर्व उक्त भूमि पर खेती करने की अनुज्ञा दी थी । थुम्बेगौड़ा की मृत्यु के पश्चात्

---

[1] (2014) 2 एस. सी. सी. 1.

उसका पुत्र अर्थात् अभियुक्त सं. 1 उक्त भूमि पर खेती कर रहा था । वर्ष 1993 में सोमशेखरप्पा की मृत्यु हो गई किंतु अभियुक्त सं. 1 ने अभियुक्त सं. 2 (प्रत्यर्थी सं. 2) के साथ मिलीभगत करके इस आशय का एक जाली मृत्यु प्रमाणपत्र तैयार किया कि सोमशेखरप्पा की वर्ष 2010 में मृत्यु हो गई थी । इस जाली दस्तावेज में मृत थुम्बेगौड़ा के पिता का नाम सन्नासिद्देगौड़ा के स्थान पर सोमशेखरप्पा लिखा हुआ था । ऐसा जाली दस्तावेज तैयार करके अभियुक्त ने अवैध अभिलाभ कमाना चाहा ।

8. प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 19 दिसंबर, 2016 की शिकायत और आरोप पत्र तथा तारीख 28 मार्च, 2018 के आदेश (तारीख 28 मार्च, 2018 का आदेश क्या है, इसका उल्लेख प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा नहीं किया गया है) को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन फाइल करके पुनः उच्च न्यायालय में समावेदन किया । यह उल्लेखनीय है कि अपर सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग) और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी बेलूर के न्यायालय में आरोप पत्र फाइल किए जाने पर इसे 2018 के अपराध मामला सं. 116 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 2 के अभिखंडन आवेदन को 2020 के दांडिक आवेदन सं. 4998 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी सं. 2 एक लोक सेवक है । अभियोजन पक्ष के अनुसार उसके विरुद्ध शिकायत किया गया अपराध एक लोक सेवक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए किया गया था । अन्वेषण अधिकारी ने प्रत्यर्थी सं. 2 को अभियोजित करने के लिए मंजूरी मांगी किंतु मंजूरी से इनकार कर दिया गया । ऐसी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि मंजूरी देने से मना कर दिया गया था इसलिए एक लोक सेवक के विरुद्ध दांडिक अपराध के लिए अभियोजन जारी नहीं रह सकता । परिणामतः, उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 25 नवंबर, 2020 के आदेश द्वारा शिकायत, आरोप पत्र तथा 28 मार्च, 2018 के आदेश को अपास्त कर दिया गया ।

9. इससे व्यथित होकर, शिकायतकर्ता ने अपीलार्थी के रूप में वर्तमान कार्यवाही संस्थित की है ।

10. इस न्यायालय ने तारीख 15 मई, 2023 के आदेश द्वारा अपीलार्थी को विशेष इजाजत याचिका फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान की । विलंब को माफ करने के पश्चात् सूचना जारी की गई । तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 2 ने प्रति-शपथपत्र फाइल किया । प्रत्यर्थी सं. 2 के प्रति-शपथपत्र के परिशीलन करने पर इस न्यायालय ने तारीख 21 नवंबर, 2023 को आयोजित की गई कार्यवाहियों में पाया कि उक्त शपथपत्र के साथ संलग्न अनुलग्नक आर-1 एक फाइल नोटिंग थी जिसमें कुछ अधिकारियों की यह राय दर्ज की गई थी कि द्वितीय प्रत्यर्थी को अभियोजित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी देने का यह उपयुक्त मामला नहीं है । तथापि, इस न्यायालय ने पाया कि मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकारी का कोई विनिश्चय नहीं था । ऐसी स्थिति में, इस न्यायालय ने राज्य को मंजूरी के पहलू पर विचार करने के लिए एक शपथपत्र फाइल करने और सुसंगत दस्तावेज प्रस्तुत करने का निदेश दिया ।

11. इसके अनुसरण में प्रत्यर्थी सं. 1 अर्थात् कर्नाटक राज्य ने शपथपत्र फाइल किया । शपथपत्र में कहा गया है कि अन्वेषण अधिकारी ने तारीख 22 जनवरी, 2018 को उपायुक्त, हसन को पत्र लिखकर ग्राम लेखाकार मल्लिकार्जुन (प्रत्यर्थी सं. 2) को अभियोजित करने के लिए मंजूरी मांगी थी । यह भी दिखाई देता है कि अपर उपायुक्त, हसन ने तारीख 17 मार्च, 2018 के पत्र द्वारा अन्वेषण अधिकारी को सूचित किया था कि संबंधित फाइल की परीक्षा करने और विधिक सलाहकार की राय पर विचार करने के बाद प्रत्यर्थी सं. 2 के अभियोजन के मंजूरी नहीं दी गई थी ।

12. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि उच्च न्यायालय द्वारा शिकायत के साथ-साथ आरोप पत्र और संबंधित संज्ञान आदेश को अभिखंडित करना न्यायोचित नहीं था । उन्होंने दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 2 के संबंध में अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि जाली दस्तावेज बनाना प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा

अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में नहीं कहा जा सकता । अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने **शंभू नाथ मिश्रा** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया ।

13. राज्य के विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलीलों का समर्थन किया ।

14. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के आदेश का समर्थन किया और दलील दी कि उच्च न्यायालय ने ठीक ही शिकायत और आरोप पत्र को अभिखंडित किया था । किसी लोक सेवक का अभियोजन करने के लिए मंजूरी के बिना उसे अभियोजित नहीं किया जा सकता । यह एक भली-भांति स्थिर प्रतिपादना है और इस संबंध में **डी. देवराज** बनाम **ओबेस सेंडर्स हुसैन**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने विनिश्चय का अवलंब लिया ।

15. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर इस न्यायालय द्वारा उचित विचार किया गया है ।

16. इस अपील में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी सं. 2, जिस पर ग्राम लेखाकार के रूप में जो कि एक लोक सेवक है, अपनी पदीय स्थिति का दुरुपयोग करके अन्य बातों के साथ-साथ जाली दस्तावेज बनाने का अभियोग लगाया गया है, का अभियोजन करने के लिए मंजूरी की आवश्यकता है ? सक्षम प्राधिकारी ने मंजूरी देने से इनकार कर दिया है । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी मंजूरी के अभाव में प्रत्यर्थी सं. 2 को अभियोजित नहीं किया जा सकता और परिणामत: शिकायत तथा आरोप पत्र को अभिखंडित कर दिया और अपीलार्थी को यह स्वतंत्रता दी गई कि वह प्रत्यर्थी सं. 2 का अभियोजित करने के लिए मंजूरी से इनकार करने को उचित कार्यवाही में, यदि ऐसा परामर्श दिया जाए, चुनौती दे सकता है ।

17. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 न्यायाधीशों और लोक सेवकों के अभियोजन से संबंधित है । धारा 197 निम्नलिखित प्रकार से है :–

---

[1] (1997) 5 एस. सी. सी. 326.

[2] (2020) 7 एस. सी. सी. 695.

“197. न्यायाधीशों और लोक सेवकों का अभियोजन –

(1) जब किसी व्यक्ति पर, जो न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट या ऐसा लोक सेवक है या था जिसे सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से ही उसके पद से हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं, किसी ऐसे अपराध का अभियोग है, जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित था, तब कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान (लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 में अन्यथा उपबंधित के सिवाय) –

(क) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के कार्यकलाप के संबंध में, यथास्थिति, नियोजित है या अभिकथित अपराध के किए जाने के समय नियोजित था, केंद्रीय सरकार की ;

(ख) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो किसी राज्य के कार्यकलाप के संबंध में, यथास्थिति नियोजित है, या अभिकथित अपराध के किए जाने के समय नियोजित था, उस राज्य सरकार की पूर्व-मंजूरी से ही करेगा, अन्यथा नहीं :

परंतु जहां अभिकथित अपराध खंड (ख) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति द्वारा उस अवधि के दौरान किया गया था जब राज्य में संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन की गई उद्घोषणा प्रवृत्त थी, वहां खंड (ख) इस प्रकार लागू होगा मानो उसमें आने वाले ‘राज्य सरकार’ पद के स्थान पर ‘केंद्रीय सरकार’ पद रख दिया गया है ।

स्पष्टीकरण – संदेहों को दूर करने के लिए तद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि ऐसे लोक सेवक के मामले में किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 166क, धारा 166ख, धारा 354क, धारा 354ख, धारा 354ग, धारा 354घ, धारा 370,

धारा 375, धारा 376, धारा 376क, धारा 376कख, धारा 376ग, धारा 376घ, धारा 376घक, धारा 376घख या धारा 509 के अधीन किया गया है ।

2. कोई भी न्यायालय संघ के सशस्त्र बल के किसी सदस्य द्वारा किए गए किसी अपराध का संज्ञान, जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था, जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसा कार्य करना तात्पर्यित था, केंद्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी से ही करेगा, अन्यथा नहीं ।

(3) राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकती है कि उसमें यथाविनिर्दिष्ट बल के ऐसा वर्ग या प्रवर्ग के सदस्यों को जिन्हें लोक व्यवस्था बनाए रखने का कार्यभार सौंपा गया है, जहां कहीं भी वे सेवा कर रहे हों, उपधारा (2) के उपबंध लागू होंगे और तब उस उपधारा के उपबंध इस प्रकार लागू होंगे मानो उसमें आने वाले 'केंद्रीय सरकार' पद के स्थान पर 'राज्य सरकार' पद रख दिया गया है ।

(3क) उपधारा (3) में किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय ऐसे बलों के किसी सदस्य द्वारा, जिसे राज्य में लोक व्यवस्था बनाए रखने का कार्यभार सौंपा गया है, किए गए किसी ऐसे अपराध का संज्ञान, जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था जब वह उस राज्य में संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन की गई उद्घोषणा के प्रवृत्त रहने के दौरान अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित था, केंद्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी से ही करेगा, अन्यथा नहीं ।

(3ख) इस संहिता में या किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, यह घोषित किया जाता है कि 20 अगस्त, 1991 को प्रारंभ होने वाली और दंड प्रक्रिया

संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1991 पर राष्ट्रपति जिस तारीख को अनुमति देते हैं उस तारीख की ठीक पूर्ववर्ती तारीख को समाप्त होने वाली अवधि के दौरान ऐसे किसी अपराध के संबंध में जिसका उस अवधि के दौरान किया जाना अभिकथित है जब संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन की गई उद्घोषणा राज्य में प्रवृत्त थी, राज्य सरकार द्वारा दी गई कोई मंजूरी या ऐसी मंजूरी पर किसी न्यायालय द्वारा लिया गया संज्ञान अविधिमान्य होगा और ऐसे विषय में केंद्रीय सरकार मंजूरी प्रदान करने के लिए सक्षम होगी तथा न्यायालय उसका संज्ञान लेने में सक्षम होगा ।

(4) यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार उस व्यक्ति का जिसके द्वारा और उस रीति का जिससे वह अपराध या वे अपराध, जिसके या जिनके लिए ऐसे न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या लोक सेवक का अभियोजन किया जाना है, अवधारण कर सकती है और वह न्यायालय विनिर्दिष्ट कर सकती है जिसके समक्ष विचारण किया जाना है ।"

18. धारा 197 की उपधारा (1) के अनुसार जब किसी व्यक्ति पर, जो न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट या ऐसा लोक सेवक है या था जिसे सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से भी उसके पद से हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं, किसी ऐसे अपराध का अभियोग है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसा कार्य करना तात्पर्यित था, तो कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के सिवाय नहीं करेगा ।

19. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 की व्याप्ति, परिधि और प्रभाव ने इस न्यायालय का पर्याप्त ध्यान आकर्षित किया है । ऐसे सभी विनिश्चयों का उल्लेख और विस्तार से विचार करना आवश्यक नहीं है । यह कहना पर्याप्त होगा कि अभियोजन के लिए ऐसी मंजूरी देने का

उद्देश्य पदीय कर्तव्य और कार्यों का निर्वहन करने वाले लोक सेवक को तुच्छ दांडिक कार्यवाहियां आरंभ करके अनुचित उत्पीड़न से संरक्षा करना है ।

20. **उड़ीसा राज्य** बनाम **गणेश चंद्र ज्यू**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने धारा 197 के अधीन संरक्षण की अंतर्निहित अवधारणा को स्पष्ट किया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "7. धारा 197 के अधीन दिया गया संरक्षण उत्तरदायी लोक सेवकों की ऐसे अपराधों के लिए संभवत: कष्टप्रद दांडिक कार्यवाहियां संस्थित करने के विरुद्ध संरक्षा देना है, जो उनके द्वारा अभिकथित रूप से तब किए गए हैं जब वे लोक सेवकों के रूप में कार्य कर रहे हैं या उनके द्वारा ऐसा कार्य करना तात्पर्यित है । विधान-मंडल की नीति लोक सेवकों को पर्याप्त संरक्षण देने की है जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनके द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में किए गए किसी भी कार्य के लिए किसी युक्तियुक्त कारण के बिना उन्हें अभियोजित न किया जा सके और यदि मंजूरी दी जाती है, तो सरकार को अभियोजन का पूर्ण नियंत्रण प्रदान करना है, यदि वे इसका प्रयोग चुनते हैं । इस संरक्षा की कतिपय सीमाएं हैं और यह तभी उपलब्ध है जब लोक सेवक द्वारा किए गए अभिकथित कृत्य का उसके पदीय कर्तव्य के निर्वहन से युक्तियुक्त रूप से संबंध है और कार्य करने के लिए केवल एक कवच न बने । यदि अपने पदीय कर्तव्य को करते हुए उसने अपने कर्तव्य के आधिक्य में कार्य किया है किंतु उस कार्य और पदीय कर्तव्य के पालन के बीच एक युक्तियुक्त संबंध है, तो यह आधिक्य लोक सेवक को इस संरक्षा से वंचित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा । प्रश्न अपराध की प्रकृति के बारे में नहीं है जैसेकि क्या अभिकथित अपराध में ऐसा तत्व अंतर्विष्ट है जो अपराधी के लोक सेवक होने पर आवश्यक रूप से निर्भर था, बल्कि यह है कि क्या यह किसी लोक सेवक द्वारा अपनी पदीय हैसियत

---

[1] (2004) 8 एस. सी. सी. 40.

के निर्वहन में कार्य करते हुए किया गया था या उसके द्वारा ऐसा कार्य करना तात्पर्यित था । इससे पूर्व कि धारा 197 का आश्रय लिया जा सके, अवश्य यह दर्शित किया जाना चाहिए कि संबंधित पदधारी ऐसे अपराध का अभियुक्त है जो उसके द्वारा अभिकथित रूप से अपने पदीय कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए किया गया है या उसके द्वारा ऐसा कार्य किया जाना तात्पर्यित था । यह कर्तव्य वैसा नहीं है जिसकी जांच की उतनी आवश्यकता है जितनी कि कार्य की क्योंकि पदीय कार्य पदीय कर्तव्य के निर्वहन में और साथ ही इसके उल्लंघन में भी किया जा सकता है । कार्य संबंधित लोक सेवक के पदीय कर्तव्यों की व्याप्ति और सीमा के भीतर होना चाहिए । कार्य की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है और इस धारा के अधीन संरक्षण तभी उपलब्ध है जब कार्य उसके पदीय कर्तव्य की व्याप्ति और सीमा में आता हो । यह अवधारण करने के लिए कोई सार्वभौमिक नियम नहीं हो सकता कि किए गए कार्य और पदीय कर्तव्य के बीच कोई युक्तियुक्त संबंध है या नहीं, न ही ऐसा कोई नियम अधिकथित करना संभव है । इस संबंध में एक सुरक्षित और सुनिश्चित परीक्षण इस बात पर विचार करना होगा कि क्या शिकायत किए गए कार्य को करने में लोक सेवक द्वारा किए गए लोप या उपेक्षा से उसे उसके पदीय कर्तव्य के उल्लंघन के आरोप के लिए उत्तरदायी बनाया जा सकता है । यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो यह कहा जा सकता है कि ऐसा कार्य लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते हुए किया गया था और शिकायत किए गए कार्य और लोक सेवक के पदीय कर्तव्य के बीच हर संबंध था । यह पहलू यह स्पष्ट करता है कि धारा 197 की अवधारणा शिकायत मामले के संस्थित हो जाने पर तुरंत लागू नहीं हो जाती है ।”

21. **शंभू नाथ मिश्रा** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी इस न्यायालय द्वारा इस पहलू की परीक्षा की गई थी । यह प्रश्न उठाते हुए कि क्या कोई लोक सेवक, जो अभिकथित रूप से अभिलेख गढ़ने या लोक निधि का दुर्विनियोग करने का अपराध कारित करता है, उसके बारे में यह कहा

जा सकता है कि उसने वह कार्य अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किया था । यह मत व्यक्त करते हुए कि अभिलेख गढ़ना या लोक निधि का दुर्विनियोग करना पदीय कर्तव्य नहीं है, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "5. प्रश्न यह है कि जब यह अभिकथन किया जाता है कि लोक सेवक ने अभिलेख गढ़ने या लोक निधि आदि का दुर्विनियोग करने का अपराध कारित किया है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि उसने ऐसा अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किया है । अपने पदीय कर्तव्यों को अग्रसर करते हुए या निर्वहन करते हुए मिथ्या अभिलेख गढ़ना और लोक निधि आदि का दुर्विनियोग करना लोक सेवक का पदीय कर्तव्य नहीं है । पदीय हैसियत उसे केवल अभिलेख गढ़ने या लोक निधि का दुर्विनियोग करने में समर्थ तो बनाती है । इसका अर्थ यह नहीं है कि यह उसी संव्यवहार के अनुक्रम में किए गए अपराध से अभिन्न रूप से या अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है जैसाकि विद्वान् न्यायाधीश ने माना था । इन परिस्थितियों में, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय तथा विचारण न्यायालय द्वारा मंजूरी के प्रश्न पर व्यक्त किया गया मत स्पष्ट रूप से अवैध है और इसे कायम नहीं रखा जा सकता ।"

22. यहां तक कि प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए **डी. देवराज** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी इस न्यायालय ने **गणेश चंद्र ज्यू** (उपर्युक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट किया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

> "35. उड़ीसा राज्य **बनाम** गणेश चंद्र ज्यू [(2004) 8 एस. सी. सी. 40 = 2004 एस. सी. सी. (क्रि.) 2104] वाले मामले में इस न्यायालय ने 'पदीय कर्तव्य' अभिव्यक्ति के प्रयोग का निर्वचन इस अर्थ में किया कि लोक सेवक द्वारा कृत्य या लोप अपनी सेवा के अनुक्रम में किया गया होना चाहिए और यह अपने कर्तव्य के निर्वहन में किया गया होना चाहिए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 का संरक्षात्मक कवच किसी लोक सेवक द्वारा सेवा में रहते हुए प्रत्येक कार्य या लोप पर विस्तारित नहीं है । इस धारा के

प्रवर्तन की व्याप्ति केवल उन कार्यों और लोपों तक निर्बंधित है जो लोक सेवक द्वारा पदीय कर्तव्य के निर्वहन में किए जाते हैं ।"

23. इस प्रकार, इस न्यायालय ने सतत् रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 का संरक्षात्मक कवच किसी लोक सेवक के सेवा में रहते हुए किए गए प्रत्येक कार्य या लोप तक विस्तारित नहीं है । यह केवल उन कार्यों और लोपों तक निर्बंधित है जो लोक सेवकों द्वारा पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किए जाते हैं ।

24. सुनवाई समाप्त होने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् काउंसेल ने **ए. श्रीनिवासुलु** बनाम **राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को अपनी इस दलील के समर्थन में प्रसारित किया कि किसी लोक सेवक को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना अभियोजित नहीं किया जा सकता । हमने **ए. श्रीनिवासुलु** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए पूर्वोक्त विनिश्चय का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है, वह ऐसा मामला था जिसमें केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) द्वारा सात व्यक्तियों को अभिकथित रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 468, 471 के साथ पठित धारा 120ख के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) और 13(1)(घ) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 468 और 193 के अधीन अपराध कारित करने के लिए आरोप-पत्रित किया गया था । अभियुक्त व्यक्तियों में से चार अभियुक्त-1, अभियुक्त-2, अभियुक्त-3 और अभियुक्त-4 भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स लिमिटेड, जो एक सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम है, के पदधारी थे और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 दोनों के अधीन लोक सेवक थे । अभियुक्त सं. 1 आरोप पत्र फाइल किए जाने से पूर्व सेवा-निवृत्त हो गया था । जहां तक अभियुक्त सं. 3 और 4 का संबंध है, सक्षम प्राधिकारी ने मंजूरी देने से इनकार कर दिया था किंतु अभियुक्त सं. 1 के संबंध में यह मंजूरी दी गई थी । इसी

---

[1] 2023 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 900.

संदर्भ में इस न्यायालय ने अभियुक्त सं. 1 के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी की आवश्यकता पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया कि अभियुक्त सं. 1 को आपराधिक षड्यंत्र का अपराध कारित करने के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता था जब अभियुक्त सं. 3 और 4 को अभियोजित करने के लिए मंजूरी से इनकार कर दिया गया था जिनके साथ मिलकर अभिकथित आपराधिक षड्यंत्र किया गया था । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि इस विशिष्ट मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में वास्तव में केवल चार व्यक्तियों अर्थात् अभि. सा. 16, अभियुक्त-3, अभियुक्त-4 और अभियुक्त-5 को आलिप्त किया गया था । अभियुक्त-1 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में आलिप्त नहीं किया गया था । अभि. सा. 16 द्वारा वर्ष 1998 में किए गए एक संस्वीकृति कथन के पश्चात् ही अभियुक्त-1 को आलिप्त किया गया था । अभियुक्त-1 के विरुद्ध यह अभिकथन थे कि उसने इन अपराधों को करने के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ आपराधिक षड्यंत्र रचा था । किंतु बीएचईएल के प्रबंधन ने अभियुक्त-3 और अभियुक्त-4 को अभियोजित करने के लिए मंजूरी देने से दो बार इस आधार पर इनकार कर दिया था कि जो विनिश्चय किए गए थे वे कंपनी के वाणिज्यिक विवेक के दायरे में थे । यदि प्रबंधन कंपनी के अनुसार, सह-षड्यंत्रकारियों का वही कृत्य वाणिज्यिक विवेक के दायरे में आता है, तो यह अकल्पनीय है कि अभियुक्त-1 का कृत्य आपराधिक षड्यंत्र का भाग होने के नाते उसके पदीय कर्तव्य के निर्वहन से बाहर है जिससे उसे संहिता की धारा 197(1) के अधीन संरक्षण से वंचित किया जा सके ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

24.1 स्वीकृत रूप से, प्रस्तुत मामले के तथ्य **ए. श्रीनिवासुलु** (उपर्युक्त) वाले मामले के तथ्यों से स्पष्ट रूप से प्रभेदनीय हैं और इसलिए उक्त विनिश्चय वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं किया जा सकता ।

25. यह प्रश्न कि क्या प्रत्यर्थी सं. 2 एक लोक सेवक के रूप में अपनी पदीय स्थिति का दुरुपयोग करके शासकीय दस्तावेजों को गढ़ने में अंतर्ग्रस्त था, एक विचारण का विषय है । निश्चित रूप से, यह दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है कि ऐसे दस्तावेजों का विनिर्माण या अभिलेख का गढ़ना किसी लोक सेवक के पदीय कर्तव्य का भाग नहीं हो सकता । ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय द्वारा शिकायत के साथ-साथ आरोप पत्र को पूरी तरह से अभिखंडित करना न्यायोचित नहीं था, विशेष रूप से जब प्रत्यर्थी सं. 2 के अतिरिक्त दो अन्य अभियुक्त हैं । मामले का एक और पहलू है । प्रत्यर्थी सं. 2 ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन पूर्ववर्ती कार्यवाहियों में शिकायत को असफल रूप से चुनौती दी थी । यद्यपि उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को शिकायत दर्ज करने के पश्चात् फाइल की गई किसी प्रतिकूल रिपोर्ट को चुनौती देने की स्वतंत्रता दी गई थी किंतु चुनौती को आरोप पत्र तक सीमित रखने के बजाय प्रतिवादी सं. 2 ने शिकायत को भी चुनौती दी जो वह नहीं कर सकता था ।

26. ऐसी स्थिति में, हमारा यह नि:संकोच मत है कि उच्च न्यायालय ने शिकायत के साथ-साथ आरोप पत्र को पूरी तरह से अभिखंडित करके गलती की थी । परिणामत:, हम 2020 के दांडिक आवेदन सं. 4998 में तारीख 25 नवंबर, 2020 को पारित किए गए उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हैं । हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस निर्णय में की गई मताभिव्यक्तियां केवल वर्तमान चुनौती का विनिश्चय करने के प्रयोजनार्थ हैं और इनका गुणागुण के आधार पर हमारी राय के रूप में अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, सभी दलीलें खुली रखी जाती हैं ।

27. तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है । खर्चे के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

गतांक से आगे.........

592. ऐतिहासिक सामग्री, जिसका अवलंब उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के दौरान लिया गया, को कानूनी सिद्धांतों, जो निम्नलिखित विनिश्चयों से उद्भूत होते हैं, के संदर्भ में महत्व दिया जाना चाहिए । न्यायालय को सार्वजनिक इतिहास के मामलों पर यथोचित पुस्तकों और निदेशात्मक सामग्री को महत्व देना चाहिए । जब न्यायालय ऐसा करती है, तो उसको इस तथ्य के प्रति जागरूक रहना चाहिए कि यात्रावृत्तांतों, जैसेकि गज़ेटियरों में समाविष्ट वृत्तांतों के आधार पर, ऐसे मामलों पर विचार व्यक्त किए जाते हैं, जिनका परीक्षण समय के दूरस्थ बिंदु पर प्रतिपरीक्षा द्वारा नहीं किया जा सकता । परिणामस्वरूप ऐसे मामलों, जिनमें पक्षों के मध्य टकराव के कारण कब्जे और हक के संबंध में विवाद्यक उद्भूत होते हैं, ऐतिहासिक वृत्तांतों को निश्चायक नहीं माना जा सकता । अत: न्यायालय को विवाद्यक विश्वसनीय साक्ष्यिक सामग्री के आधार पर निर्णीत करने चाहिए ।

593. इतिहास का निर्वचन संकटों से भरा हुआ कार्य होता है । जैसाकि हमने बाबरनामा के मामले में देखा है, ऐतिहासिक अभिलेखों में स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले अंतर होते हैं । इन दस्तावेजों के अनुवाद एक जैसे नहीं होते और उनकी अपनी परिसीमाएं भी होती हैं । न्यायालय को किसी नकारात्मक अनुमान, जो ऐतिहासिक पाठ में समाविष्ट नहीं है, पर पहुंचने में अत्यंत सावधान रहना चाहिए । ऐसे मामलों में हम किसी कानून या अभिवचन का अर्थान्वयन नहीं कर रहे होते । ऐसे मामलों में हम ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार कर रहे होते हैं, जो हमारे स्वयं के विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में दंतकथाओं, कहानियों, परंपराओं और वृत्तांतों के ईर्द-गिर्द घूमती हैं । इतिहास का निर्वचन इतिहास-विद्या की सहायता के बिना किया जाना सदैव खतरनाक होता है । ऐतिहासिक संदर्भ में परिणामों और अनुमानों को निकाले जाने के प्रयोजनार्थ विधिक सिद्धांतों का उपयोजन जोखिम भरा कार्य होता है । प्रत्येक व्यक्ति को इतिहास के मौन से नकारात्मक अनुमान निकालते हुए विधिक रूप से प्रशिक्षित विवेक का प्रयोग करते हुए अत्यंत सावधान रहना चाहिए । अनेक अवसरों पर यह सर्वोत्तम होता है कि ऐतिहासिक

मौन को उसी अवस्था में छोड़ दिया जाए, जहां से वे संबंधित हैं – अर्थात् ब्रह्मांड का मौन ।

594. ई. एच. कार ने तारीख 19 जुलाई, 1953 को आयोजित टाईम्स लिटरेरी सप्लीमेंट नामक कार्यक्रम में 'विक्टोरियन हिस्ट्री' नाम शीर्षक वाले विषय पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित सावधानियां बरते जाने की चेतावनी दी थी :–

> "भूतकाल और वर्तमान के मध्य दोनों तरह का यातायात होता है, वर्तमान का मार्ग भूतकाल से निकलता है, फिर भी वर्तमान निरंतर रूप से भूतकाल का पुनर्सृजन करता है । यदि इतिहास को इतिहासकार बनाते हैं, तो यह भी उतना ही सत्य है कि इतिहास ने भी इतिहासकारों को बनाया है ... इतिहास के वर्तमान के दार्शनिक, जो वस्तुपरक निर्धारण के जोखिमों और व्यक्तिपरक सापेक्षता के अथाह अंतर के मध्य तीव्र धार पर उग्रतापूर्वक संतुलन बनाने का प्रयास करते हैं, को इस बात की पूर्ण जानकारी होती है कि विचार और कार्य जटिलतापूर्वक एक-दूसरे से गुथे होते हैं और इतिहास में कारणता की प्रकृति विज्ञान से किसी भी प्रकार से कम नहीं होती, जिस कारणवश यह प्रतीत होता है कि वे अपनी समझ से अधिक दृढ़तापूर्वक टालमटोल का प्रयास करते हैं, जितना कि वे उस पर नियंत्रण करने का, वे प्रश्न करने में अधिक व्यस्त रहते हैं, बजाय उत्तर देने के ।*"

ऐसे मामले, जैसाकि हमारे समक्ष वर्तमान में उपस्थित हैं – इतिहास के कारण एक अन्य कठिनाई उत्पन्न होती है । पूर्वी दर्शनशास्त्र में धार्मिक परंपराएं आने वाली पीढ़ियों के माध्यम से उन तरीकों, जो लिखित अभिलेखों तक सीमित नहीं होतीं, द्वारा परिवर्तित होती रहती हैं । मार्क ब्लॉच ने अपनी पुस्तक 'द हिस्टोनियन्स क्राफ्ट' में इस विषय पर बताया है :–

> "अन्य सभ्यताओं की भांति हमारी सभ्यता भी सदैव अपने भूतकाल के प्रति अत्यंत सचेत रही है । इसको इस प्रयोजनार्थ

---

* ई. एच. कार में रिचर्ड जे. इवांस द्वारा 'इतिहास क्या है ?' पर व्याख्यान, पैनगुइन (2018 पुनर्संस्करण) पृष्ठ 12.

अनेक बातों ने आनत किया है – ईसाई विरासत और साथ ही शास्त्रीय विरासत, दोनों ने । हमारे प्रथम स्वामी, ग्रीक और रोमन इतिहास अभिलिखित करने वाले लोग थे । इसाईयत इतिहासकारों का धर्म है । अन्य धार्मिक प्रणालियां भी संसार में मनुष्य के आगमन के पूर्व की पौराणिक कथाओं के आधार पर अपने विश्वास और संस्कारों की खोज करने में सक्षम रही है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

यद्‌यपि हमने यात्रियों और गज़ेटियरों में अभिलिखित वृत्तांतों को निर्दिष्ट किया है, फिर भी हम उनको सावधानी के साथ पढ़ेंगे । इन वृत्तांतों की अंतर्वस्तु को हक, जिसके विनिर्धारण के लिए वर्तमान कार्यवाही में न्यायनिर्णयन आवश्यक हो गया है, के विवाद्‌यक पर निश्चायक नहीं माना जा सकता । यद्‌यपि गज़ेटियर न्यायालय के समक्ष सार्वजनिक इतिहास के मामलों पर एक झलक प्रस्तुत कर सकते हैं, किंतु इतिहास स्वयमेव लोगों को बांटने वाले मुकाबले का मामला रहा है । यद्‌यपि न्यायालय उनमें समाविष्ट अंतर्वस्तु का सुसंगत सामग्री के रूप में अवलंब लेने से विवर्जित नहीं है, फिर भी उनको न्यायालय को वर्तमान मामले के न्यायनिर्णयन के अनुक्रम में तथ्यों पर आधारित निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ सक्षम बनाने के लिए अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के साथ पढ़ा जाना चाहिए । इन सभी बातों के अतिरिक्त न्यायालय को सत्य की गहराई तक पहुंचने के अपने प्रयास में उन मामलों की छान-बीन करनी चाहिए, जो अनुश्रुत प्रकृति के हैं और जो परस्पर विरोधी दावों के चक्रव्यूह में छिपे हुए हैं । यात्रा वृत्तांतों और गज़ेटियरों में भूले-बिसरे इतिहास के अस्पष्ट खंड समाविष्ट होते हैं । इन अंतर्वस्तुओं को प्रदान किया जाने वाला साक्ष्यिक मूल्य आवश्यक रूप से संदर्भ पर निर्भर होता है और उनके सावधानीपूर्वक किए गए मूल्यांकन का विषय होता है । हमारे विश्लेषण में वह संतुलन सम्मिलित है, जो सावधानी के लिए आवश्यक होता है, जैसाकि हमने विवादित स्थल के विवाद के संबंध में साम्राज्यवाद के परिप्रेक्ष्य में यात्रियों और गज़ेटियरों के वृत्तांतों को पढ़ा है ।

ढ.14 इतिहासकारों के विवरण

595. चार इतिहासकारों तारीख 13 मई, 1991 को एक दस्तावेज तैयार किया जिसका शीर्षक है 'बाबरी मस्जिद या राम का जन्मस्थान ? भारत राष्ट्र के समक्ष इतिहासकारों की रिपोर्ट' । इस रिपोर्ट को (i) दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रोफेसर और भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद् के अध्यक्ष प्रोफेसर आर. एस. शर्मा; (ii) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के इतिहास के भूतपूर्व प्रोफेसर और भारतीय इतिहास कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर एम. अथर अली; (iii) दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास के प्रोफेसर बी. एन. झा; और (iv) कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय हरियाणा के पुरातत्व के प्रोफेसर और सामाजिक विज्ञान संकाय के डीन प्रोफेसर सूरजभान द्वारा लिखा गया है । इस रिपोर्ट को प्रोफेसर आर. एस. शर्मा, प्रोफेसर एम अथर अली, प्रोफेसर डी. एन. झा और प्रोफेसर सूरजभान द्वारा तारीख 13 मई, 1991 के आवरण पत्र के साथ प्रस्तुत किया गया था ।

इस रिपोर्ट में समाविष्ट महत्वपूर्ण विचार निम्नलिखित हैं :–

"(i) स्कंद पुराण (अयोध्या महात्म्य में) में भगवान राम के जन्मस्थान के रूप में बाबरी मस्जिद के स्थल को सम्मिलित किए जाने का कोई आधार नहीं है;

(ii) मस्जिद के स्तंभों पर दर्शित उत्कीर्णन किसी वैष्णववादी संपर्क की ओर संकेत नहीं करते;

(iii) ईंटों के आधार, जो वर्ष 1989 में प्रोफेसर बी. बी. लाल की देखरेख में संचालित उत्खनन में पाए गए थे, का उनके द्वारा उल्लेख वर्ष 1990 में किया गया, यद्यपि उनके द्वारा अनेक शोधपत्र प्रकाशित किए जा चुके थे;

(iv) प्रोफेसर बी. बी. लाल ने उन स्तंभ आधारों का उल्लेख अपनी उस रिपोर्ट में नहीं किया, जिसको उन्होंने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के समक्ष वर्ष 1979-80 में प्रस्तुत किया था;

(v) गड्ढ़ों के मलबे में पत्थर के स्तंभ या मंदिर की छत की वास्तुकला उस स्थान पर नहीं पाई गई, जहां स्तंभ आधार खड़े थे; और

(vi) वर्ष 1675-76 में रचित रामचरितमानस में बाबरी मस्जिद का कोई उल्लेख नहीं है ।

इस अध्ययन के आधार पर यह निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गए :–

(i) पाठ्यों में ऐसा कोई साक्ष्य विद्यमान नहीं है, जिसके आधार पर यह उपदर्शित किया जा सके कि 18वीं शताब्दी के पूर्व अयोध्या में उस स्थल के साथ भगवान राम के जन्मस्थान के रूप में आदर का कोई भाव संलग्न था;

(ii) यह अवधारणा किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई आधार उपलब्ध नहीं है कि भगवान राम का मंदिर या कोई अन्य मंदिर उस स्थल पर विद्यमान था जहां वर्ष 1528-29 में बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया था;

(iii) यह किंवदंती कि बाबरी मस्जिद ने भगवान राम के जन्मस्थल को अपने अधिभोग में लिया हुआ है, 18वीं शताब्दी के अंत तक उद्भूत नहीं हुआ था, और यह अभिकथन 19वीं शताब्दी के आरंभ तक नहीं किया गया था कि मस्जिद के निर्माण के लिए मंदिर को ध्वस्त किया गया था;

(iv) भगवान राम के जन्मस्थल पर स्थित मंदिर और सीता रसोई के ध्वंस की 'पूर्ण विकसित किंवदंती' वर्ष 1850 की है, जिसके पश्चात् 'आस्था पर आधारित काल्पनिक इतिहास का पूर्णविकसित निर्माण' किया गया ।"

596. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उल्लेख किया कि इस रिपोर्ट पर प्रोफेसर डी. एन. झा द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे और इस तथ्य को प्रोफेसर सूरजभान (वादी साक्षी 16), जिन्होंने शपथपूर्वक साक्ष्य दिया, द्वारा स्वीकार किया गया । इस रिपोर्ट में यह उपदर्शित किया गया है कि चारों इतिहासकारों को प्रोफेसर बी. बी. लाल की देखरेख में कराए गए उत्खनन कार्य से प्राप्त सामग्री निरीक्षण के प्रयोजनार्थ उपलब्ध नहीं कराई गई । न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अभि. सा. 16 के शपथपूर्वक कथन को उद्धृत करते हुए उनकी विशेषज्ञता को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि वे पुरातत्वविद् हैं और मध्ययुगीन इतिहास पर प्राधिकार प्राप्त व्यक्ति नहीं हैं ।

597. न्यायमूर्ति अग्रवाल जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रोफेसर सुविरा जायसवाल (वादी साक्षी 18) के साक्ष्य का विश्लेषण किया । वादी साक्षी 18 ने अभिकथित किया कि ध्वंस वाले स्थल के बारे में उनका ज्ञान समाचार पत्रों या अन्य इतिहासकारों के अध्ययन पर आधारित है । न्यायमूर्ति अग्रवाल ने वादी साक्षी 18 के प्रत्यय पत्रों को यह उल्लेख करते हुए प्रश्नगत किया कि वह प्रोफेसर आर. एस. शर्मा, जो इस रिपोर्ट के सह लेखक हैं, के मार्गदर्शन के अंतर्गत शोधार्थी थी । अंतत: उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि इस रिपोर्ट पर चारों इतिहासकारों (प्रोफेसर डी. एन. झा द्वारा हस्ताक्षरित नहीं थी) द्वारा हस्ताक्षरित नहीं थी और एक अभिकथित विशेषज्ञ (वादी साक्षी 18) द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने अध्ययन और अनुसंधान पर आधारित नहीं हैं बल्कि उन बातों की मात्र अनुकृति अन्य लोगों द्वारा लिखा गया । तद्नुसार विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के अधीन विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है । डा. धवन ने निवेदन किया कि न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने मात्र उस रिपोर्ट के आधार पर, जिस पर प्रोफेसर डी. एन. झा द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए, चारों इतिहासकारों की आलोचना कर दी । उन्होंने निवेदन किया कि विद्वान् न्यायाधीश ने इतिहासकारों की विश्वसनीयता का निर्धारण करते हुए इस रिपोर्ट के अन्य लेखकों के साथ वादी साक्षी 18 के निर्धारण पर विचार किया । उन्होंने निवेदन किया कि ये मताभिव्यक्तियां समस्त इतिहासकारों से संबंधित नहीं हैं बल्कि केवल वादी साक्षी 18 से संबंधित हैं ।

598. हमारा विचार है कि न्यायमूर्ति अग्रवाल ने चारों इतिहासकारों के प्रति अनुचित रूप से कठोर दृष्टिकोण अपनाया है । ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान् न्यायाधीश ने इतिहासकारों की रिपोर्ट पर विचार करते हुए वादी साक्षी 18 (जिसने स्वतंत्र रूप से कोई निर्धारण किए बिना केवल अन्य लोगों के कार्य का अवलंब लिया था) की आलोचना की । वादी साक्षी 18 इतिहासकारों के दल की सदस्य नहीं थी । यह तथ्य कि चारों इतिहासकारों में से एक इतिहासकार ने आवरण दस्तावेज पर हस्ताक्षर नहीं किए, कोई ऐसा कारण नहीं हो सकता, जिसके आधार पर संपूर्ण रिपोर्ट को अस्वीकृत कर दिया जाए । इतिहासकारों को जो महत्व

दिया जा सकता था, वह भिन्न मामला है किंतु इस पहलू का विश्लेषण करते हुए उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह इतिहासकारों की व्यक्तिगत हैसियत और अर्हता के संबंध में मताभिव्यक्ति करते । अत: यह आवश्यक है कि इस बात को स्पष्ट किया जाए कि वे मताभिव्यक्तियां उस कार्य के लिए अनावश्यक थीं, जिस पर उच्च न्यायालय द्वारा जोर दिया गया ।

चारों इतिहाकारों की रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि उन्होंने ऐसा निवेदन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि उनको उस सामग्री के निरीक्षण का लाभ प्राप्त नहीं हुआ, जिसके आधार पर डा. बी. बी. लाल ने वर्ष 1979 में अनुसंधान किया था । किंतु इसके अलावा अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इतिहासकारों की रिपोर्ट उस सामग्री के पूर्व दिनांकित है, जिसके आधार पर वह भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट के स्वरूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुई और जिसको उच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में वाद के लंबन के दौरान तैयार किया गया । चूंकि चारों इतिहासकारों को उस सामग्री का लाभ प्राप्त नहीं हुआ, जिसका निर्धारण आज उच्च न्यायालय द्वारा इस निर्णय के पूर्ववर्ती खंड में किया गया, अत: यह आवश्यक नहीं है कि मामले को और आगे बढ़ाया जाए सिवाय इस बात को स्पष्ट किए जाने के कि इतिहासकारों की रिपोर्ट, जो भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट के पूर्व की रिपोर्ट है, अधिक महत्व की नहीं हो सकती, चूंकि उनको उस सामग्री के विश्लेषण का लाभ प्राप्त नहीं हुआ, जो भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट से उद्भूत हुई । भगवान राम के जन्मस्थान के बाबत हिंदुओं की आस्था और विवाद के संबंध में इतिहासकारों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से उनके विचार निर्मित होते हैं । चूंकि वादों में साक्ष्य प्रस्तुत किए जा चुके हैं, इसलिए यह न्यायालय इतिहासकारों की रिपोर्ट के आधार पर तथ्य आधारित कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकती और उसको साक्ष्य का मूल्यांकन संपूर्णता में करना होगा । जहां तक वाद संख्या 5 का संबंध है, हक के विवाद्यक का निर्णय वाद संख्या 4 में साक्ष्य के संपूर्ण निर्धारण के साथ किया जाना चाहिए । इसलिए वर्तमान प्रक्रम पर निर्णय का अगला खंड वाद संख्या 4 के विश्लेषण के साथ अग्रसर होगा । अंतत:, हक के प्रश्न का न्यायनिर्णयन साक्ष्य पर संपूर्णता में विचारोपरांत किया जाएगा ।

ण. वाद संख्या 4 सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड

ण.1. वादपत्र का विश्लेषण

599. वाद संख्या 4 तारीख 18 दिसंबर, 1961 को सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा संस्थित कराया गया था । इस वाद के वादपत्र में निम्नलिखित यथासंशोधित अनुतोषों की ईप्सा की गई :–

> "(क) इस सीमा तक घोषणात्मक डिक्री पारित की जाए कि वादपत्र के साथ संलग्न रेखाचित्र नक्शे में ए. बी. सी. डी. वर्णों द्वारा उपदर्शित संपत्ति को सार्वजनिक मस्जिद, जिसे सामान्य रूप से बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है, घोषित किया जाए और संलग्न रेखाचित्र नक्शे में ई. एफ. जी. एच. वर्णों द्वारा दर्शित मस्जिद के साथ संलग्न भूमि को सार्वजनिक मुस्लिम कब्रिस्तान घोषित किया जाए, जैसाकि वादपत्र के पैरा 2 में विनिर्दिष्ट किया गया है ।
>
> (ख) यदि न्यायालय के विचार में कब्जा प्रदान किया जाना उचित अनुतोष प्रतीत किया जाता है, तो मूर्तियों और अन्य वस्तुओं, जिनको हिंदुओं द्वारा उनकी उपासना की वस्तुओं के रूप में मस्जिद में रख दिया है, को हटाते हुए वाद में वादग्रस्त मस्जिद और कब्रिस्तान का कब्जा प्रदान किए जाने हेतु डिक्री वादियों के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध पारित की जाए ।
>
> (खख) कानूनी रिसीवर को आदेशित किया जाए कि वे वादपत्र की अनुसूची 'क' में वर्णित विवादित संपत्ति का कब्जा उस पर निर्मित अप्राधिकृत ढांचों को हटाने के पश्चात् सौंप दें ।"

[टिप्पण : अनुतोष (खख) को उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 25 मई, 1995 को पारित आदेश के मतावलंबन में वादपत्र में संशोधन द्वारा अंत:स्थापित किया गया ।]

यह वाद इस प्रकथन पर आधारित है कि अयोध्या में एक प्राचीन ऐतिहासिक मस्जिद स्थित है, जिसको सामान्य बोलचाल की भाषा में बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है और जिसका निर्माण बाबर द्वारा 433 वर्षों पूर्व भारत पर उसकी विजय और भारत के राज्य क्षेत्रों

को उसके द्‌वारा कब्जे में लिए जाने के उपलक्ष्य में कराया गया था । वादपत्र में यह प्रकथन भी किया गया है कि मस्जिद सामान्य मुस्लिमों के उपयोग के प्रयोजनार्थ पूजा स्थल के रूप में धार्मिक समारोहों के लिए निर्मित की गई थी । मस्जिद के मुख्य निर्माण को वादपत्र के साथ संलग्न नक्शे में ए. बी. सी. डी. वर्णों द्‌वारा दर्शित किया गया है । वह भूमि, जिस पर मस्जिद स्थित है, से सटा हुआ एक कब्रिस्तान भी है । वादियों के अनुसार मस्जिद और कब्रिस्तान, दोनों ही ईश्वर में निहित होते हैं और मस्जिद को उसके निर्माण के समय से मुस्लिमों द्‌वारा नमाज अदा करने और कब्रिस्तान को शवों को दफनाए जाने के लिए प्रयोग किया जाता रहा है । वादपत्र में यह प्रकथन किया गया है कि इस मस्जिद के रख-रखाव और देखभाल के लिए शाही खजाने से नकद अनुदान का संदाय किया जाता था, जो अवध के नवाब वज़ीर के शासनकाल तक जारी रहा । ब्रिटिश सरकार ने अवध को संयुक्त प्रांत में सम्मिलित किए जाने के पश्चात् अयोध्या के आस-पास शोलापुर और बहोरनपुर ग्रामों में वर्ष 1864 तक सरकारी राजस्व से मुफ्त अनुदानों के रूप में 'नकद ननकार' प्रदान किया जाना जारी रखा ।

600. वादपत्र में अभिकथित किया गया है कि मस्जिद के मुख्य भवन के बाहर 17 x 21 फीट की माप वाले चबूतरे, जिसके ऊपर मंडप के स्वरूप में लकड़ी का छोटा सा ढांचा स्थित था, पर हिंदू पूजा संचालित की जा रही थी । वर्ष 1885 में महंत रघुबर दास द्‌वारा संस्थित कराए गए वाद के वादपत्र में चबूतरे पर मंदिर के निर्माण के लिए अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ वृत्तांत और साथ ही वाद को खारिज किए जाने का संदर्भ समाविष्ट है । वादियों के अनुसार महंत रघुबर दास ने स्वयं अपनी तरफ से, जन्मस्थान और जन्मस्थान में हितबद्‌ध लोगों के संपूर्ण निकाय की तरफ से वाद फाइल किया था । इस वाद में बाबरी मस्जिद के मुतवल्ली को प्रतिवादी बनाया गया था । वादियों के अनुसार इस वाद का निर्णय इस आधार पर पूर्व आदेश की भांति क्रियान्वित होता है कि इस मामले में प्रत्यक्षत: और सारभूत रूप से निम्नलिखित विवाद्‌यक थे :–

(i) बाबरी मस्जिद की विद्‌यमानता; और

(ii) मस्जिद के साथ संलग्न भूमि पर निर्माण करने के हिंदुओं के अधिकार ।

इस वाद के वादपत्र में 1934 के दंगों और मस्जिद के उन भागों, जिनको नुकसान पहुंचाया गया था, के सरकारी खर्च पर पुनर्निर्माण का संदर्भ समाविष्ट है । वादियों के अनुसार 1936 के उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम के अधिनियमित होने के पश्चात् वक्फ़ आयुक्त द्वारा एक जांच संचालित की गई और आयुक्त की रिपोर्ट को शासकीय गजट में प्रकाशित किया गया । वादियों का दावा है कि मुस्लिम मस्जिद शांतिपूर्ण कब्जे में थी, जिसको तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक नमाज के लिए प्रयोग किया जाता था और इसी तारीख को अभिकथित रूप से हिंदुओं की एक भीड़ मस्जिद में घुस गई थी और उसके भीतर मूर्तियों को स्थापित करने के द्वारा उसको अपवित्र कर दिया था । वादियों के अनुसार इस बात को स्वीकार किए बिना यह उपधारणा करते हुए कि वहां पर एक हिंदू मंदिर विद्यमान था, जैसाकि प्रतिवादियों द्वारा अभिकथित किया गया है और जिसके स्थल पर सम्राट बाबर द्वारा 433 वर्ष पूर्व मस्जिद का निर्माण किया गया था और इस प्रकार मुस्लिमों ने मस्जिद के निर्माण के समय से आरंभ होने वाले उनके लंबे, अनन्य और निरंतर कब्जे को दृष्टि में रखते हुए अपने कब्जे को प्रतिकूल कब्जे के सिद्धांत द्वारा परिपूर्ण कर लिया है । तत्पश्चात् वादपत्र में धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों और फैज़ाबाद के सिविल न्यायाधीश के समक्ष वादों के संस्थापन को संदर्भित किया गया है । हिंदुओं को वर्ष 1950 के वाद संख्या 2 में व्यादेश के आदेश के परिणामस्वरूप मस्जिद के भीतर रखी हुई मूर्तियों की पूजा करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी गई किंतु मुस्लिमों को उसमें प्रवेश करने से रोक दिया गया । वादपत्र में यह प्रकथन किया गया है कि वाद संपूर्ण मुस्लिम समुदाय की तरफ से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 8 के अधीन आवेदन के साथ संस्थित कराया गया ।

601. वादपत्र में यह भी अभिकथित किया गया है कि रिसीवर, जो कब्जे में है, संपत्ति के वास्तविक स्वामी की तरफ से कब्जा धारण करता है और वादी इस संपत्ति के कब्जे के तभी हकदार होंगे, यदि वे वाद में सफल हो जाएं । अनुकल्प में कब्जे के लिए भी अभिवाक् किया गया है ।

वादपत्र को बाबरी मस्जिद के ध्वंस के पश्चात् अभिलेख पर पश्चात्वर्ती तथ्यों और घटनाओं का उल्लेख लाए जाने के प्रयोजनार्थ संशोधित किया गया था । वादियों के अनुसार किसी मस्जिद के लिए कोई विशिष्ट ढांचा अपेक्षित नहीं होता और मस्जिद के ध्वंस के पश्चात् भी वह भूमि, जिस पर मस्जिद खड़ी थी, मस्जिद ही रहेगी, जिस पर मुस्लिम नमाज अदा करने के हकदार हैं । वादपत्र में 1993 के अयोध्या के कतिपय स्थानों का अधिग्रहण अधिनियम के अधीन अर्जित की गई भूमि के अधिग्रहण का भी उल्लेख है ।

वादियों के अनुसार वाद के लिए वादकारण तारीख 23 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ, जब हिंदुओं ने अभिकथित रूप से मस्जिद में दोषपूर्ण ढंग से प्रवेश किया और उसके भीतर मूर्तियां रखे जाने के द्वारा उसको अपवित्र कर दिया । इन क्षतियों के बाबत यह दावा किया गया है कि वे सतत प्रकृति की हैं जहां तक राज्य के विरुद्ध वाद फाइल किए जाने का प्रश्न है, वादकारण अभिकथित रूप से तारीख 29 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ, जब इस संपत्ति को नगर मजिस्ट्रेट, जिसने संपत्ति का कब्जा रिसीवर को हस्तगत किया था, द्वारा कुर्क किया गया था । प्रत्यर्थी ने तारीख 5 जनवरी, 1950 को प्रभार ग्रहण किया था ।

वे अनुतोष जिनका वाद में दावा किया गया है, उपरोक्त प्रकथनों पर आधारित हैं । आवश्यक रूप से वादियों का पक्षकथन इस अभिवाक् पर अग्रसर होता है कि :–

(i) बाबर द्वारा मस्जिद का निर्माण वाद फाइल किए जाने के 433 वर्ष पूर्व सार्वजनिक पूजा स्थल के रूप में कराया गया था और मुस्लिमों द्वारा इसका प्रयोग निरंतर रूप से नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जा रहा है ; और

(ii) यह उपधारणा करते हुए भी कि उस स्थल पर एक मंदिर स्थित था, जिसको मस्जिद के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ढहा दिया गया था, फिर भी मुस्लिमों ने प्रतिकूल कब्जे के सिद्धांत द्वारा अपने हक को परिपूर्ण कर लिया है । इसी आधार पर वादियों ने हक की घोषणा का दावा किया है और साथ ही यह दावा भी किया है कि यदि कब्जे की डिक्री की प्रार्थना किया जाना अपेक्षित हो तो उनके पक्ष में कब्जे की डिक्री भी प्रदान की जाए ।

602. वाद संख्या 4 तारीख 18 दिसंबर, 1961 को सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और अयोध्या के नौ मुस्लिम निवासियों द्वारा संस्थित कराया गया था । वाद संख्या 4 में प्रतिवादी संख्या 1 गोपाल सिंह विशारद हैं; प्रतिवादी संख्या 2 रामचंद्र दास परमहंस दास हैं; प्रतिवादी संख्या 3 निर्मोही अखाड़ा है; प्रतिवादी संख्या 4 महंत रघुनाथ दास हैं; प्रतिवादी संख्या 5 उत्तर प्रदेश राज्य है; प्रतिवादी संख्या 6 फैज़ाबाद के कलक्टर हैं; प्रतिवादी संख्या 7 फैज़ाबाद के नगर मजिस्ट्रेट हैं; प्रतिवादी संख्या 8 फैज़ाबाद के पुलिस अधीक्षक हैं; प्रतिवादी संख्या 9 प्रियदत्त राम हैं; प्रतिवादी संख्या 10 अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष हैं; प्रतिवादी संख्या 13 धर्म दास हैं; प्रतिवादी संख्या 17 रामेश चंद्र त्रिपाठी हैं और प्रतिवादी संख्या 20 मदन मोहन गुप्ता हैं ।

603. अब इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि वाद संख्या 4 में कब्जे के प्रकथन के संबंध में समाविष्ट अभिकथनों की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की जाए । वादपत्र के पैरा 2 में किया गया अभिवाक् यह है कि बाबर द्वारा इस मस्जिद के निर्माण के समय से ही इसका प्रयोग मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाता रहा है और मुस्लिम इस मस्जिद, जिसमें तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक नमाजें अदा की जाती थीं, के शांतिपूर्ण कब्जे में रहे हैं । अनुकल्प में यह अभिवाक् किया गया है कि यह अवधारणा करते हुए (बिना स्वीकार किए) कि उस स्थल पर एक हिंदू मंदिर विद्यमान था, जैसाकि हिंदुओं द्वारा अभिकथित किया जाता है और जिसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण किया गया और मुस्लिमों ने मस्जिद का निर्माण किए जाने से आरंभ होने वाले समय से अपने लंबे, अनन्य और निरंतर कब्जे को दृष्टि में रखते हुए और उसको तब तक जारी रखते हुए जब मस्जिद को अपवित्र किया गया (मूर्तियों को रखकर), अपने हक को प्रतिकूल कब्जे के सिद्धांत द्वारा परिपूर्ण कर लिया है और मंदिर और 'हिंदू जनता के अधिकार, हक या हित, यदि कोई हों, समाप्त हो गए हैं' । इसलिए कब्जे का दावा इस अभिवाक् पर आधारित है कि नमाज अदा किए जाने के लिए मस्जिद का प्रयोग निरंतर रूप से उसके निर्माण काल से वर्तमान तक किया जाता रहा है और यह प्रयोग लंबा, निरंतर और अनन्य है ।

ण.2. लिखित कथन

गोपाल सिंह विशारद

604. गोपाल सिंह विशारद द्‌वारा फाइल किए गए लिखित कथन (जो वाद संख्या 1 में वादी भी है) में यह अभिकथित किया गया है कि यदि मुस्लिम मस्जिद के कब्जे में थे, तो वह कब्जा वर्ष 1934 में समाप्त हो गया । हिंदुओं का दावा है कि वे वर्ष 1934 के पश्चात् से कब्जे में रहे हैं और उनका कब्जा अभिकथित रूप से प्रतिकूल कब्जे में परिवर्तित हो चुका है । लिखित कथन के अनुसार मस्जिद में वर्ष 1934 से कोई नमाज अदा नहीं की गई । इसके अतिरिक्त किसी भी हिंदू या महंत के बारे में व्यक्तिगत रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह संपूर्ण हिंदू समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है । अभिकथित रूप से हिंदुओं की पूजा ढांचे, जिसको वर्ष 1934 से मंदिर के रूप में वर्णित किया जाता रहा है, के भीतर और स्वीकृतत: जनवरी, 1950 से नगर मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसरण में निरंतर रूप से जारी है । अतिरिक्त लिखित कथन में यह अभिवाक् किया गया है कि 1936 का उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम अधिकारातीत (ultra vires) है । लिखित कथन में यह प्रकथन किया गया है कि अधिनियम के अंतर्गत कोई भी विनिर्धारण गैर मुस्लिमों के विरुद्‌ध हक के प्रश्न के विनिर्धारण के रूप में क्रियान्वित नहीं हो सकता । पश्चात्वर्ती लिखित कथन में यह अभिकथित किया गया है कि हिंदू जन्मभूमि के स्थल की उपासना प्राचीनकाल से करते चले आ रहे हैं ; मुस्लिम जन्मभूमि मंदिर के कब्जे में कभी भी नहीं थे और यदि वे कब्जे में थे तो वह कब्जा भी वर्ष 1934 में समाप्त हो गया । लिखित कथन में यह अभिकथन भी किया गया है कि वाद परिसीमा द्‌वारा बाधित है । जहां तक वर्ष 1885 के वाद का संबंध है, यह निवेदन किया गया है कि वादी ने वाद प्रतिनिधिक हैसियत में फाइल नहीं किया और वह केवल अपने व्यक्तिगत हित के बाबत मुकदमे की पैरवी कर रहा है ।

निर्मोही अखाड़ा

605. निर्मोही अखाड़ा के लिखित कथन में मस्जिद के अस्तित्व से इनकार किया गया है । निर्मोही अखाड़ा ने अभिकथित किया है कि

उनको महंत रघुबर दास द्वारा फाइल किए गए किसी भी वाद की कोई जानकारी नहीं थी । उनके अनुसार इस स्थल पर मस्जिद कभी भी विद्यमान नहीं थी और इसलिए मुस्लिम समुदाय को तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक इस स्थल पर नमाज अदा करने का कभी कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ । उन्होंने दलील दी कि बाबरी मस्जिद के रूप में वर्णित संपत्ति सदैव हिंदू देवताओं की मूर्ति सहित जन्मभूमि का मंदिर रही है और है । लिखित कथन के अनुसार राम चबूतरा पर स्थित मंदिर को वर्ष 1885 के बाद न्यायिक रूप से मान्यता प्रदान कर दी गई थी । यह दलील दी गई कि जन्मभूमि मंदिर सदैव निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में था और कोई अन्य नहीं बल्कि केवल हिंदुओं को ही इस मंदिर में प्रवेश और उपासना की अनुज्ञा प्राप्त थी । उनके अनुसार चढ़ावा निर्मोही अखाड़ा के प्रतिनिधि द्वारा प्राप्त किया जाता था । यह दावा किया गया है कि इस मंदिर की कुर्की के पश्चात् केवल निर्मोही अखाड़ा के पुजारी ही मंदिर में स्थापित देवताओं की पूजा करते रहे हैं । लिखित कथन में इस बात से इनकार किया गया है कि मुस्लिम इस ढांचे के भीतर वर्ष 1934 से नमाज अदा करते रहे हैं और यह दलील दी गई है कि वाद संख्या 4 परिसीमा द्वारा बाधित है । निर्मोही अखाड़ा ने अतिरिक्त लिखित कथन में इस बात से इनकार किया है कि वर्ष 1885 के वाद में निकाले गए निष्कर्ष पूर्व आदेश (res-judicata) की भांति क्रियान्वित होते हैं । इस अभिवचन से भी इनकार किया गया है कि मुस्लिमों का हक प्रतिकूल कब्जे द्वारा परिपूर्ण हो गया है ।

उत्तर प्रदेश राज्य

606. उत्तर प्रदेश राज्य ने अपना लिखित कथन यह अभिकथित करते हुए फाइल किया कि सरकार विवादित संपत्ति में हितबद्ध नहीं है और वाद में प्रतिवाद नहीं करना चाहती ।

अखिल भारतीय हिंदू महासभा

607. दसवें प्रतिवादी अखिल भारतीय हिंदू महासभा की तरफ से फाइल किए गए लिखित कथन में यह प्रकथन किया गया है कि भारत को स्वाधीनता प्राप्त होने के पश्चात् मूल हिंदू विधियों को पुनर्जीवित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप वादी किसी भी प्रकार के विधिक या

संवैधानिक अधिकार का दावा नहीं कर सकते । उनके द्वारा फाइल किए गए अतिरिक्त लिखित कथन में तारीख 22 दिसंबर, 1949 की घटना से इनकार किया गया है और यह दावा किया गया है कि प्रश्नगत स्थान पर प्राचीनकाल से एक प्रवेश द्वार था । इस लिखित कथन के अनुसार यह स्थल भगवान राम का जन्मस्थान है और उनके जन्मस्थान पर किसी भी मस्जिद का निर्माण नहीं किया जा सकता था ।

अभिराम दास और धर्मदास

608. अभिराम दास और धर्मदास, जो अभिराम दास के चेला होने का दावा करते हैं, द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में राम जन्मभूमि के स्थल पर किसी मस्जिद के निर्माण की विधिमान्यता को चुनौती दी गई है । इस लिखित कथन के अनुसार यह स्थल चारों तरफ से अन्य संपत्तियों द्वारा घिरा हुआ है और इसके चारों तरफ हिंदू उपासना के स्थल विद्यमान हैं और इसलिए यहां पर कोई भी भवन मुस्लिम विधि के अनुसार विधिमान्य रूप से मस्जिद नहीं हो सकता । लिखित कथन में इस आधार पर विधिमान्य वक्फ़ से इनकार किया गया है कि वक्फ़ प्रतिकूल कब्जे पर आधारित नहीं हो सकता । लिखित कथन के अनुसार राम जन्मभूमि स्थल पर एक प्राचीन मंदिर विद्यमान था, जो विक्रमादित्य के शासनकाल से संबंधित था और जिसको मीर बाकी द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था । यह प्रकथन किया गया है कि राम जन्मभूमि को नष्ट नहीं किया जा सकता, चूंकि देवता दिव्य और अमर होते हैं । यह निवेदन किया गया कि मस्जिद के निर्माण के बावजूद इस क्षेत्र पर देवताओं का कब्जा बना रहा और कोई भी व्यक्ति हिंदुओं के पूजा स्थलों से गुजरे बिना तीन गुंबदों वाले ढांचे के भीतर प्रवेश नहीं कर सकता था । अन्य हिंदू प्रतिवादियों द्वारा फाइल किए गए लिखित कथनों में भी इसी आधार पर प्रकथन किए गए । हिंदू पक्षों द्वारा फाइल किए गए लिखित कथनों के उत्तर में प्रत्युत्तर फाइल किए गए ।

ण.3 उच्च न्यायालय द्वारा विरचित विवाद्यक और निकाले गए निष्कर्ष

609. (1) क्या प्रश्नगत भवन, जिसको वादपत्र के साथ संलग्न रेखाचित्र वाले मानचित्र में मस्जिद के रूप में वर्णित किया गया है, मस्जिद था, जैसाकि दावा वादियों द्वारा किया गया है ? यदि उत्तर सकारात्मक में है :–

(क) इसका निर्माण कब किया गया था और किसके द्वारा, क्या बाबर द्वारा जैसाकि वादियों द्वारा अभिकथित किया गया है या मीर बाकी द्वारा जैसाकि प्रतिवादी संख्या 13 द्वारा अभिकथित किया गया है;

(ख) क्या इस भवन का निर्माण किसी अभिकथित हिंदू मंदिर के स्थल पर उसको ध्वस्त किए जाने के पश्चात् किया गया, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 13 द्वारा अभिकथित किया गया है; यदि ऐसा है, तो इसका प्रभाव ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मस्जिद का निर्माण बाबर के आदेशों द्वारा या उसके आदेशों के अंतर्गत किया गया था । यह तात्विक नहीं है कि इस मस्जिद का निर्माण वास्तव में मीर बाकी द्वारा किया गया था या किसी अन्य के द्वारा । मुस्लिम वर्ष 1934 तक नियमित रूप से नमाज अदा करते रहे, जिसके पश्चात् तारीख 22 दिसंबर, 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाज अदा की जाती रही । यह निरंतर रूप से कब्जे और उपयोग के लिए पर्याप्त है । मस्जिद के निर्माण के प्रयोजनार्थ किसी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया । बाबर के शासनकाल के दौरान जब तक मस्जिद का निर्माण नहीं कर दिया गया, तब तक इस परिसर के बारे में यह विश्वास नहीं किया जाता था कि इसको भगवान राम का जन्मस्थान प्रतीत किया जाता है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – उन्होंने वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

1(क). नकारात्मक में उत्तर दिया वादी बाबर द्वारा किसी ढांचे के निर्माण को साबित कर पाने में विफल रहे हैं । अभिवचनों और साक्ष्य की अनुपस्थिति में इस बाबत कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि इस ढांचे का निर्माण किसने किया बल्कि इस बाबत एक संसूचित अनुमान यह है कि इस ढांचे का निर्माण औरंगजेब (वर्ष 1659-1707 ए. डी.) के शासनकाल के दौरान किया गया था ।

1(ख). उत्तर सकारात्मक में दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – विवाद्यक संख्या 1(क) का उत्तर प्रतिवादियों के विरुद्ध दिया गया । विवाद्यक संख्या 1(ख) का उत्तर

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादियों के पक्ष में दिया गया :–

1(ख)(क). क्या मोहल्ला कोट रामचंद्र, जिसको रामकोट, अयोध्या नगर (नजूल संपदा) के नाम से जाना जाता है, में वर्ष 1931 के खसरा के नजूल भूखंड संख्या 583 पर भवन स्थित था ? यदि ऐसा था तो इसका प्रभाव ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – तारीख 6 दिसंबर, 1992 को ढांचे के ध्वंस के पश्चात् यह आवश्यक नहीं रह गया है कि संपत्ति की पहचान के प्रश्न को निर्णीत किया जाए ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – यद्‌यपि भवन को मोहल्ला कोट रामचंद्र के 1931 के खसरा के 583 नंबर के नजूल भूखंड पर स्थित दर्शित किया गया है, फिर भी इससे दोनों समुदायों के दावों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, चूंकि उत्तर प्रदेश राज्य ने बिना किसी प्रतिवाद वाला लिखित कथन फाइल किए जाने के द्‌वारा कोई दावा नहीं किया है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – यह संपत्ति सरकार से संबंधित 1931 के खसरा के नजूल भूखंड संख्या 583 पर विद्‌यमान थी ।

1(ख)(ख). क्या भवन सर्वशक्तिमान ईश्वर को समर्पित था, जैसाकि वादियों द्‌वारा अभिकथित किया गया है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मस्जिद एक विधिमान्य मस्जिद थी ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – असुसंगत होने के कारण उत्तर नहीं दिया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – उत्तर वादियों के विरुद्‌ध दिया ।

1(ख)(ग). क्या भवन का प्रयोग मुस्लिम समुदाय के सदस्यों द्‌वारा प्राचीनकाल से नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाता रहा ? यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मस्जिद, जिसका निर्माण बाबर के आदेशों द्‌वारा या उसके आदेशों के अधीन किया गया, का प्रयोग मुस्लिमों द्‌वारा वर्ष 1934 तक नियमित रूप से नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाता था । वर्ष 1934 से तारीख 22 दिसंबर, 1949

तक केवल शुक्रवार की नमाज अदा की जाती थी, किंतु यह कब्जे और प्रयोग की निरंतरता को उपदर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – चूंकि दोनों पक्ष ढांचे का प्रयोग अपनी-अपनी उपासना, विश्वास और आस्था के स्वरूपों के अनुसार प्रथम वाद संस्थित कराए जाने के पूर्व 80 वर्षों से कर रह रहे थे, अत: भीतरी बरामदा और भवन एक समुदाय के प्रयोग तक सीमित नहीं थे ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – उत्तर वादियों के विरुद्ध दिया गया ।

2. क्या वादी वर्ष 1949 तक वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे में थे और उनको वर्ष 1949 में इस संपत्ति से बेकब्जा कर दिया गया था, जैसाकि वादपत्र में अभिकथित है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – हक का संबंध कब्जे से होता है । इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि दोनों ही पक्ष विवादित परिसर के हकधारक और कब्जेदार थे ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध उत्तर दिया ।

3. क्या वाद परिसीमा के भीतर फाइल किया गया ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद परिसीमा द्वारा बाधित है ।

4. क्या सामान्य हिंदुओं और विशेष रूप से भगवान श्रीराम के श्रद्धालुओं ने प्रतिकूल और निरंतर कब्जे द्वारा अधिकारपूर्वक वैधानिक अवधि से अधिक अवधि तक चिरभोग के तौर पर विवादित स्थल पर उनके उपासना के अधिकार को परिपूर्ण कर लिया है, जैसा कि प्रतिवादियों द्वारा अभिकथित किया गया है ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – दोनों ही पक्षों को वर्ष 1985 के पहले से संयुक्त धारक और कब्जेदार अभिनिर्धारित किया जाता है और इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिकूल कब्जे के प्रश्न को निर्णीत किया जाए ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वर्ष 1856-57 से बाहरी बरामदा मुस्लिमों द्वारा न तो प्रयोग किया गया है और न ही उनके कब्जे में है किंतु भीतरी बरामदे का प्रयोग दोनों पक्षों द्वारा किया गया है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

> 5(क). क्या प्रतिवादी 1936 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 5(3) के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए वादी के प्रशासन के अंतर्गत वक्फ़ के रूप में वादग्रस्त संपत्ति की प्रकृति को चुनौती देने से विबंधित हैं (यह विवाद्यक विद्वान् सिविल न्यायाधीश द्वारा पहले ही तारीख 21 अप्रैल, 1966 के आदेश द्वारा नकारात्मक में निर्णीत किया जा चुका है) ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में अभिकथित किया कि वे न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – इस विवाद्यक का उत्तर सिविल न्यायाधीश के तारीख 21 अप्रैल, 1966 के आदेश द्वारा वादियों के विरुद्ध दिया जा चुका है ।

> 5(ख). क्या उक्त अधिनियम सामान्य हिंदुओं और विशेषरूप से प्रतिवादियों के अधिकारों पर लागू नहीं होता ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में अभिकथित किया कि वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी. शर्मा – प्रतिवादियों और हिंदू पक्षों के पक्ष में और वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया गया ।

> 5(ग). क्या उक्त अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही निश्चायक है (इस विवाद्यक को विद्वान् सिविल न्यायाधीश द्वारा पहले ही तारीख 21 अप्रैल, 1996 के आदेश द्वारा नकारात्मक में निर्णीत किया जा चुका है) ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में अभिकथित किया है कि वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – सिविल न्यायाधीश के तारीख 21 अप्रैल, 1996 के आदेश द्वारा यह निर्णय पारित किया गया कि 1936 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा (3) के अधीन वर्जन मुख्य वाद के प्रतिवादियों की प्रतिरक्षा को प्रभावित नहीं करता ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – तारीख 21 अप्रैल, 1966 के आदेश द्वारा नकारात्मक में निर्णीत किया गया ।

> 5(घ). क्या 1936 के अधिनियम संख्या 13 के उक्त उपबंध अधिकारातीत हैं, जैसाकि लिखित कथन में अभिकथित किया गया है (इस विवाद्यक पर प्रतिवादियों के काउंसिल द्वारा बल नहीं दिया गया, इसलिए विद्वान् सिविल न्यायाधीश द्वारा उनके तारीख 21 अप्रैल, 1966 के आदेश द्वारा इस विवाद्यक का कोई उत्तर नहीं दिया गया) ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में अभिकथित किया कि वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – विवाद्यक 5(घ) पर बल नहीं दिया गया ।

> 5(ङ). क्या विवाद्यक संख्या 17 पर विद्वान् सिविल न्यायाधीश द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 1996 को अभिलिखित निष्कर्षों को इस बाबत दृष्टि में रखते हुए कि 'विवादित संपत्ति के संबंध में मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम (1936 का 13) की धारा 5(1) के अधीन कोई विधिमान्य अधिसूचना जारी नहीं की गई थी' और इसलिए वादी सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को वर्तमान वाद चलाने का कोई अधिकार नहीं है ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – वे किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वाद संख्या 3 में विवाद्यक संख्या 6, जिसको प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया, के अध्यधीन रहते हुए वादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया गया ।

5(च). क्या वाद उपरोक्त निष्कर्ष को दृष्टि में रखते हुए अधिकारिता और परिसीमा के आधार पर वर्जित है, चूंकि इस वाद को 1960 के उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम के आरंभ होने के पश्चात् फाइल किया गया था ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में अभिकथित किया कि वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादियों के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध नकारात्मक में उत्तर दिया ।

6. क्या वर्तमान वाद प्रतिनिधिक वाद है और वादी मुस्लिमों के हितों और प्रतिवादी हिंदुओं के हित का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में अभिकथित किया है कि वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – सकारात्मक में उत्तर नहीं दिया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

7(क). क्या 1885 के वाद संख्या 61/280 के वादी महंत रघुबर दास ने जन्मस्थान और उसमें हितबद्ध समस्त व्यक्तियों के निकाय के पक्ष में वाद फाइल किया था ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – 1885 के वाद में दिया गया विनिश्चय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के सिद्धांतों को आकर्षित नहीं करता, चूंकि इस वाद में परोक्ष रूप से कुछ भी निर्णीत नहीं किया गया था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – नकारात्मक में उत्तर दिया । वर्ष 1885 का वाद महंत रघुबर दास द्वारा जन्मस्थान और उसमें हितबद्ध समस्त व्यक्तियों के निकाय की तरफ से फाइल नहीं किया गया था ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया गया ।

7(ख). क्या मोहम्मद असगर अभिकथित बाबरी मस्जिद का मुतवल्ली था और क्या उसने ऐसी किसी मस्जिद की तरफ से वाद का प्रतिवाद किया था ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया गया ।

7(ग). क्या उपरोक्त वाद में पारित निर्णय को दृष्टि में रखते हुए वादग्रस्त संपत्तियों के बाबत वाद के प्रतिवादियों को सम्मिलित करते हुए हिंदू समुदाय के सदस्य वर्तमान वाद के वादियों को सम्मिलित करते हुए मुस्लिम समुदाय के हक से इनकार करने से विबंधित हैं । यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – नकारात्मक में निर्णीत किया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

7(घ). क्या पूर्वोक्त वाद में वादी द्वारा विवादित संपत्ति या उसके किसी भाग के बाबत मुस्लिमों का हक उस वाद के वादी द्वारा स्वीकार किया गया था । यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – नकारात्मक में उत्तर दिया । 1885 के वाद में वादी द्वारा वादग्रस्त संपत्ति के बाबत मुस्लिमों के हक के बारे में कोई स्वीकारोक्ति नहीं की गई थी ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

8. क्या 1885 के वाद संख्या 61/280, **महंत रघुबर दास** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट और अन्य**, वाले मामले में प्रतिवादियों के विरुद्ध पारित निर्णय पूर्व आदेश (res-judicata) की भांति क्रियान्वित होता है ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – नकारात्मक में उत्तर दिया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया, यह निर्णय पूर्व आदेश (res-judicata) की भांति क्रियान्वित नहीं होगा ।

10. क्या वादियों ने प्रतिकूल कब्जे द्वारा अपने अधिकार को परिपूर्ण कर लिया है, जैसाकि वादपत्र में अभिकथित है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – दोनों पक्ष वर्ष 1885 के पहले से संयुक्त कब्जे में है । इसलिए प्रतिकूल कब्जे के विवाद्यक को विनिर्धारित किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों और मुस्लिमों के विरुद्ध उत्तर दिया ।

11. क्या वाद में अंतर्वलित संपत्ति श्रीरामचंद्र जी की जन्मभूमि का स्थल है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया । जब तक बाबर के शासनकाल के दौरान मस्जिद का निर्माण नहीं हुआ था, विवादग्रस्त परिसर को भगवान राम का जन्मस्थान नहीं माना जाता था या भगवान राम के जन्मस्थान होने का विश्वास नहीं किया जाता था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वह जन्मस्थान, जिसके बाबत विश्वास किया जाता है और जहां हिंदुओं द्वारा उपासना की जाती है, भीतरी बरामदे में विवादित ढांचे के केंद्रीय गुंबद के नीचे वाला स्थान है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

12. क्या उपासना की मूर्तियों और वस्तुओं को तारीख 22 और 23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में भवन के भीतर रख दिया गया था, जैसाकि वादपत्र के पैरा 11 में अभिकथित किया गया है या वे वहां पर पहले से विद्यमान रहे हैं । किसी भी स्थिति में उनके प्रभाव ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मूर्तियों को मस्जिद के निर्मित भाग के भीतर सर्वप्रथम तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्य रात्रि के दौरान एक मंच पर रखा गया था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादी यह साबित कर पाने में विफल रहे हैं कि मूर्तियों और वस्तुओं को तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्यवर्ती रात्रि के दौरान भवन के भीतर रखा गया था । ये मूर्तियां और वस्तुएं बाहरी बरामदे में तारीख 22 दिसंबर, 1949 के पूर्व विद्यमान थीं । इस विवाद्यक का उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादी इस बात को साबित कर पाने में विफल रहे हैं कि उपासना में प्रयोग की जाने वाली मूर्तियों और वस्तुओं को भवन में तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्य रात्रि में स्थापित किया गया था ।

13. क्या सामान्य रूप से हिंदुओं और विशेष रूप से प्रतिवादियों को 'चरणों' और 'सीता रसोई' और मूर्तियों और उपासना की वस्तुओं की उपासना का अधिकार, जो वादग्रस्त संपत्ति के संबंध में यदि कोई हो, विद्यमान था, प्राप्त था ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – हक का संबंध कब्जे से होता है और दोनों पक्ष विवादग्रस्त परिसर के संयुक्त रूप से हक धारक और कब्जाधारक थे ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – सामान्य हिंदू अनेक शताब्दियों से परिसर में भीतरी बरामदे के भीतर अधिकार पूर्वक प्रवेश कर रहे थे, इसलिए इस विवाद्यक का उत्तर सकारात्मक में दिया जाता है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

14. क्या हिंदू विवादित स्थान को श्रीराम जन्मभूमि या जन्मस्थान मानते हुए उपासना करते रहे हैं और इस स्थान को पवित्र स्थान या तीर्थ स्थल मानते हुए प्राचीनकाल से अधिकार पूर्वक दर्शन करते रहे हैं । यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया था । बाबर के काल के दौरान मस्जिद के निर्माण तक इस परिसर को भगवान राम के जन्मस्थान के रूप में न तो माना जाता था और न ही इस प्रकार का कोई विश्वास किया जाता था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – सकारात्मक में उत्तर दिया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

15. क्या मुस्लिम वर्ष 1528 ए. डी. से निरंतर रूप से, स्वतंत्र रूप से और प्रतिवादियों और साधारण हिंदुओं की जानकारी में वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे में रहे हैं । यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – प्रतिकूल कब्जे के प्रश्न को निर्णीत करने की कोई आवश्यकता नहीं है, चूंकि दोनों ही पक्ष संयुक्त रूप से हक धारक हैं और कब्जे में हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों और मुस्लिमों के विरुद्ध उत्तर दिया ।

16. वादी या उनमें से कोई, यदि कोई हो, किस अनुतोष के अधिकार हैं ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी विनिर्दिष्ट अनुतोष की अनुपस्थिति में वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – यह वाद परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादी किसी अनुतोष के हकदार नहीं हैं और वाद खारिज किया जाता है ।

17. क्या कभी उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम (1936 का 13) की धारा 5(1) के अधीन वादग्रस्त संपत्ति से संबंधित कोई विधिमान्य अधिसूचना जारी की गई थी ? यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव (यह विवाद्यक पहले ही विद्वान् सिविल न्यायाधीश द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 1966 के आदेश द्वारा निर्णीत किया जा चुका है) ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी. शर्मा – सिविल न्यायाधीश के तारीख 21 अप्रैल, 1966 के आदेश द्वारा निर्णीत किया गया ।

18. विवाद्यक संख्या 17 पर विद्वान् सिविल न्यायाधीश द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 1966 को अभिलिखित निष्कर्ष के संबंध में **गुलाम अब्बास और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का प्रभाव ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी

---

[1] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 2198.

विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया विनिश्चय विवाद्यक संख्या 17 पर अभिलिखित निष्कर्ष को प्रभावित नहीं करता ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

19(क). क्या वादग्रस्त भवन (बाबरी मस्जिद के भवन) के निर्माण के पश्चात् भी भगवान श्रीराम विराजमान की मूर्तियां और स्थान श्रीराम जन्मभूमि वादग्रस्त संपत्ति के रूप में विद्यमान रहे, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 13 की तरफ से अभिकथित किया गया है और उक्त स्थानों का श्रद्धालुओं द्वारा दर्शन उपासना के प्रयोजनार्थ किया जाता रहा ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मस्जिद के निर्माण के प्रयोजनार्थ किसी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया । जब बाबर के शासनकाल के दौरान मस्जिद का निर्माण किया गया, तब तक इस परिसर के बाबत न तो यह विश्वास नहीं किया जाता था कि यह भगवान राम का जन्मस्थान है और न ही इस स्थान को भगवान राम के जन्मस्थान के रूप में प्रतीत किया जाता था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वह परिसर जिसके बाबत यह विश्वास किया जाता है कि यह भगवान राम का जन्मस्थान है, निरंतर रूप से देवता में निहित बना रहा । बाहरी बरामदे में हिंदू धार्मिक ढांचों के बाबत यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि वे वादियों की संपत्ति हैं ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

19(ख) क्या यह भवन चारों तरफ से (अन्य भवनों द्वारा) घिरा हुआ था और इस भवन के भीतर हिंदू उपासना के स्थलों से गुजरे बिना नहीं पहुंचा जा सकता था ? यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – सकारात्मक में इस सीमा तक उत्तर दिया गया कि यह भवन चारों तरफ से घिरा हुआ था और इस भवन में हिंदू उपासना के स्थलों से गुजरे बिना नहीं पहुंचा जा सकता था । तथापि, मात्र यही निष्कर्ष कोई प्रभाव नहीं रखता ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

> 19(ग). क्या हिंदुओं द्वारा प्रश्नगत भवन के निर्माण के तुरंत पहले तक वादग्रस्त संपत्ति के किसी भाग को उपासना के स्थान के रूप में प्रयोग किया जाता था ? यदि इसका निष्कर्ष सकारात्मक में है, तो क्या विवादित स्थल पर इस्लामिक सिद्धांतों को दृष्टि में रखते हुए कोई मस्जिद विद्यमान नहीं हो सकती थी ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया । जब बाबर के शासनकाल के दौरान मस्जिद का निर्माण किया गया, तब इस परिसर के बारे में न तो यह विश्वास किया जाता था कि यह भगवान राम का जन्मस्थान है और न ही इस स्थान को भगवान राम का जन्मस्थान प्रतीत किया जाता था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – हिंदू विवादित ढांचे के निर्माण के पहले से इस स्थान पर उपासना कर रहे थे । तथापि, जहां तक इस विवाद्यक के द्वितीय भाग का संबंध है, यह भाग कल्पना पर आधारित होने के कारण सुसंगत नहीं है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादग्रस्त संपत्ति भगवान राम की जन्मभूमि का स्थल है और प्रतिवादियों को इस स्थान पर उपासना का कोई अधिकार नहीं था । हिंदू इस स्थान पर उपासना प्राचीनकाल से करते चले आ रहे हैं ।

> 19(घ). क्या प्रश्नगत भवन इस स्वीकृत स्थिति को दृष्टि में रखते हुए कि इस भवन में मीनारे नहीं हैं, इस्लामिक विधि के अंतर्गत मस्जिद नहीं हो सकता ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – यह नहीं कहा जा सकता कि मस्जिद विधिमान्य रूप से मस्जिद नहीं थी ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

19(ङ). क्या प्रश्नगत भवन विधित: मस्जिद नहीं हो सकता था, चूंकि वादी द्वारा स्वयं दर्शित किए जाने के आधार पर यह स्थान तीन तरफ से कब्रिस्तान से घिरा हुआ था ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – यह नहीं कहा जा सकता कि मस्जिद विधिमान्य रूप से मस्जिद नहीं थी ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

19(च). क्या प्रश्नगत भवन के भीतर और बाहर स्थित स्तंभों में हिंदू देवताओं और देवियों के चित्र समाविष्ट थे ? यदि इस विवाद्यक का निष्कर्ष सकारात्मक है, तो क्या इस आधार पर प्रश्नगत भवन इस्लामिक सिद्धांतों के अंतर्गत मस्जिद की प्रकृति के अंतर्गत नहीं आता ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – मस्जिद के निर्माण के लिए मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया । जब मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया, तब तक इस परिसर के बारे में न तो यह विश्वास किया जाता था कि यह भगवान राम का जन्मस्थान है और न ही इसे भगवान राम के जन्मस्थान के रूप में प्रतीत किया जाता था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल : प्रथम भाग का उत्तर सकारात्मक दिया जाता है । द्वितीय भाग निरर्थक और इसे अनुत्तरित छोड़ दिया जाता है । अंत: परिणाम यह है कि इस विवाद्यक का उत्तर वादियों के पक्ष में दिया जाता है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

20(क). क्या प्रश्नगत वक्फ़ सुन्नी वक्फ़ नहीं हो सकता, चूंकि भवन का निर्माण अभिकथित रूप से किसी सुन्नी मुस्लिम द्वारा नहीं किया गया था और इस भवन का निर्माण अभिकथित रूप से मीरबाकी द्वारा किया गया था, जो अभिकथित रूप से एक शिया मुस्लिम था और अभिकथित रूप से मुतवल्ली शिया मुस्लिम थे ? ऐसा है, तो इसके प्रभाव ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – यह नहीं कहा जा सकता कि मस्जिद विधिमान्य रूप से मस्जिद नहीं थी ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – यह विवाद्यक असुसंगत है, इसलिए इसका उत्तर नहीं दिया जाता ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

20(ख). क्या अभिकथित वक्फ़ का कोई मुतवल्ली था और क्या उस अभिकथित मुतवल्ली को वाद में पक्ष न बनाए जाने के कारण यह वाद, जहां तक कब्जे के अनुतोष का संबंध है, पोषणीय नहीं है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – भवन की कुर्की के समय एक मुतवल्ली उपस्थित था और जिसकी अनुपस्थिति में वादियों को उपासनाकर्ताओं की हैसियत में कब्जे का अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद के बाबत यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वाद पोषणीय नहीं है ।

21. क्या वाद अभिकथित मूर्तियों के कुसंयोजन के कारण दूषित है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – यद्यपि मूर्ति प्रतिवादी नहीं, फिर भी वाद को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता, चूंकि मूर्ति का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व किया गया है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

22. क्या वाद विशेष लागत के साथ खारिज किए जाने योग्य है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – यद्यपि मूर्ति प्रतिवादी नहीं, फिर भी

वाद को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता, चूंकि मूर्ति का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व किया गया है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – कोई विशेष लागत प्रदान किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादी किसी अनुतोष के हकदार नहीं है । वाद दोनों पक्षों पर वाद की लागत अधिरोपित करते हुए खारिज किया जाता है ।

23. क्या वक्फ़ बोर्ड राज्य का अभिकरण है ? यदि ऐसा है, तो क्या बोर्ड राज्य के विरुद्ध वाद फाइल कर सकता है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – न तो वक्फ़ बोर्ड राज्य का अभिकरण है और न ही वक्फ़ बोर्ड द्वारा राज्य के विरुद्ध वाद फाइल किए जाने का कोई वर्जन है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद पोषणीय नहीं है ।

24. क्या वक्फ़ बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन 'राज्य' है ? यदि ऐसा है, तो क्या उक्त वक्फ़ बोर्ड राज्य होने के नाते किसी विशिष्ट समुदाय के पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हुए और अन्य समुदाय के हितों के विरुद्ध प्रतिनिधिक हैसियत में कोई वाद फाइल कर सकता है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – न तो सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड राज्य का अभिकरण है और न ही वक्फ़ बोर्ड द्वारा राज्य के विरुद्ध कोई वाद फाइल किए जाने में कोई वर्जन है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद पोषणीय नहीं है ।

25. क्या विवादित ढांचे के ध्वस्त कर दिए जाने के बाद भी,

जैसाकि दावा वादी द्वारा किया गया है, उसको मस्जिद कहा जा सकता है और यदि ऐसा नहीं है, तो क्या वादियों का दावा पोषणीय न होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वाद संख्या 4 के बाबत यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि यह वाद विवादित ढांचे को ध्वस्त कर दिए जाने के परिणामस्वरूप पोषणीय नहीं है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

26. क्या मुस्लिम खुले स्थान का प्रयोग मस्जिद के रूप में नमाज अदा करने के प्रयोजनार्थ कर सकते हैं, जबकि वह ढांचा, जो वहां पर स्थित था, ध्वस्त किया जा चुका है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – उन्होंने अभिकथित किया कि किसी विनिर्दिष्ट निष्कर्ष की अनुपस्थिति में वे न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वाद संख्या 4 के बाबत यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि यह वाद विवादित ढांचे को ध्वस्त कर दिए जाने के परिणामस्वरूप पोषणीय नहीं है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

27. क्या बाहरी बरामदे में राम चबूतरा, भंडार और सीता रसोई स्थित थे ? यदि ऐसा है, तो क्या उनको भी तारीख 6 दिसंबर, 1992 को मुख्य मंदिर के साथ ध्वस्त कर दिया गया था ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – राम चबूतरा टिफेंथेलर (1766-71 ए. डी.) की यात्रा के पूर्व किंतु मस्जिद (1528 ए. डी.) के निर्माण के पश्चात् विद्यमान था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – सभी पक्षों ने स्वीकार किया है कि उपरोक्त तीनों ढांचों को तारीख 6 दिसंबर, 1992 को ध्वस्त कर दिया

गया था, जब विवादित ढांचे को ध्वस्त किया गया था । इसलिए उत्तर सकारात्मक में दिया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – सकारात्मक में निर्णीत किया ।

28. क्या प्रतिवादी संख्या 3 कभी भी विवादित स्थल के कब्जे में रहे हैं और वादी कभी भी कब्जे में नहीं थे ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – दोनों पक्ष विवादित परिसर के संयुक्त हक धारक हैं और कब्जे में थे ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादी विवादित भवन समेत बाहरी और भीतरी बरामदों के बाबत अपने कब्जे को साबित कर पाने में विफल रहे हैं ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

उच्च न्यायालय के विचार –

उच्च न्यायालय के तीन में से दो न्यायाधीशों (न्यायमूर्ति एस. यू. खान और न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल) ने विवादित परिसर को तीन भागों में विभाजित किए जाने के लिए निर्देशित किया :

"मुस्लिम पक्षों, वाद संख्या 5 के वादियों और निर्मोही अखाड़ा, प्रत्येक को 1/3 भाग दिया जाए ।"

वह आधार, जिस पर उच्च न्यायालय ने इस त्रिपक्षीय विभाजन के लिए निर्देषित किया, संयुक्त कब्जे के बिंदु पर उसके द्वारा निकाला गया निष्कर्ष था । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने वाद संख्या 5 के वादियों के पक्ष में संपूर्ण संपत्ति की डिक्री पारित की ।

वह सामान्य आधार, जो न्यायमूर्ति एस. यू. खान द्वारा पारित निर्णय का आधार है, यह है कि मुस्लिम और हिंदू संयुक्त रूप से कब्जे में थे और चूंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 110 के अधीन हक के आधार पर कब्जे का विनिर्धारण होता है, इसलिए दोनों ही विवादित परिसर के संयुक्त रूप से हक धारक थे ।

610. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा पारित निर्णय के आधार का उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :–

(i) मुस्लिम कम से कम वर्ष 1856-57 से बाहरी बरामदे के कब्जे में नहीं थे जब अंग्रेजों द्वारा विभाजन करने वाली चाहरदीवारी का निर्माण किया गया । मुस्लिमों के पास केवल बाहरी बरामदे से रास्ते का अधिकार था;

(ii) बाहरी बरामदे पर हिंदुओं का कब्जा था और यह कब्जा मुस्लिमों की जानकारी में था । इसका साक्ष्य वर्ष 1858 के दस्तावेजों से प्राप्त होता है, जो यह उपदर्शित करते हैं कि मस्जिद के मुतवल्ली ने अनेक शिकायतें की थीं, जिनके बावजूद परिसर के भीतर ढांचे विद्यमान रहे, बिल्कुल उसी प्रकार से जैसेकि हिंदुओं का बाहरी बरामदे में प्रवेश और उपासना जारी रही;

(iii) इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि मुस्लिम विवादित संपत्ति के कब्जे में बने हुए थे । यद्यपि यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि मुस्लिमों ने भीतरी बरामदे में बिल्कुल भी प्रवेश नहीं किया या भीतरी बरामदे में वर्ष 1949 तक नमाज अदा नहीं की, फिर भी इसका विधि की दृष्टि में आशय कब्जे से नहीं होगा । यह मुस्लिमों द्वारा हिंदुओं के साथ हितकारी उपयोग था और इसलिए मुस्लिमों ने भीतरी बरामदे में अपनी पद्धति के अनुसार नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रवेश किया;

(iv) यद्यपि इस बाबत वादियों का दावा है कि चूंकि नियमित रूप से भीतरी बरामदे में नमाज अदा की जाती थी, फिर भी रिसीवर को भीतरी बरामदे के प्रयोग से संबंधित अपेक्षित सामग्री को प्राप्त करना था, किंतु ऐसी कोई सामग्री नहीं पाई गई, जिसके आधार पर यह अनुमान निकाला गया कि भीतरी बरामदे का इस प्रकार से प्रयोग नहीं किया जाता था । इससे निरंतर रूप से उपासना के स्वरूप में मुस्लिमों का अनन्य कब्जे का दावा कमजोर होता है;

(v) मुस्लिमों ने विवादित संपत्ति का परित्याग नहीं किया था । उन्होंने इस संपत्ति पर दावा करना जारी रखा और उनके इस प्रयास को ब्रिटिश सरकार द्वारा मरम्मत और रख-रखाव के लिए अनुदान के स्वरूप में मान्यता प्रदान की गई । विवादित ढांचे की सीमा तक

भवन का रख-रखाव और विभाजन की दीवार इस बात के साक्ष्य हैं और इसी प्रकार से नमाज के लिए भीतरी बरामदे में मुस्लिमों का प्रवेश भी एक साक्ष्य है । जबकि हिंदू और मुस्लिम दोनों विवादित संपत्ति में उपासकों के रूप में प्रवेश करते थे, इन दोनों के मध्य एकमात्र अंतर यह था कि हिंदू संपूर्ण संपत्ति का दर्शन करते थे, जबकि मुस्लिम नमाज अदा करने के प्रयोजनार्थ केवल भीतरी बरामदे तक सीमित थे;

(vi) यद्यपि मुस्लिम इस बात को साबित कर पाने में विफल रहे हैं कि वाद संख्या 4 में अंतर्ग्रस्त संपत्ति वर्ष 1949 तक उनके अनन्य कब्जे में थी, फिर भी दोनों ही समुदाय भीतरी बरामदे के कब्जे में थे;

(vii) बाहरी बरामदा वर्ष 1949 तक और उसके पूर्व मुस्लिमों के कब्जे में नहीं था । जहां तक भीतरी बरामदे का संबंध है, मुस्लिमों ने अपना कब्जा तारीख 23 दिसंबर, 1949 से समाप्त कर दिया था । उसके पूर्व भीतरी बरामदे के कब्जे का उपभोग हिंदुओं और मुस्लिमों, दोनों के द्वारा किया जाता था; और

(viii) बाहरी बरामदे में हिंदुओं के धार्मिक ढांचे वर्ष 1856-57 के पश्चात् से विद्यमान थे और उनका प्रबंधन और प्रशासन निर्मोही अखाड़े के संन्यासियों द्वारा किया जाता था । इसलिए जहां तक बाहरी बरामदे का संबंध है, विवादित ढांचे के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह निर्मोही अखाड़े के कब्जे में था, जबकि मुस्लिमों ने उस पर अपना कब्जा समाप्त कर दिया था । भीतरी बरामदा किसी भी पक्ष के अनन्य कब्जे में नहीं था और इसमें दर्शन के लिए दोनों ही समुदायों के सदस्य बिना किसी व्यवधान के जाते थे ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने वाद संख्या 5 में वादियों के दावे को संपूर्णता में मंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

(i) मस्जिद अपनी पवित्र प्रकृति को खो देती है, जब उसमें गैर मुस्लिमों का प्रतिकूल रूप से कब्जा हो जाता है । मुस्लिम वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे में नहीं थे और यह उपदर्शित किए जाने

के प्रयोजनार्थ कोई विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि उनके द्वारा प्राचीनकाल से नमाज अदा की जाती थी; और

(ii) मुस्लिमों ने वादग्रस्त संपत्ति पर वर्ष 1528 ए. डी. से अपना अनन्य और निरंतर कब्जा साबित नहीं किया है या उन्होंने इस बात को साबित नहीं किया है कि वे प्राचीनकाल से विवादित ढांचे में नमाज अदा करते चले आ रहे हैं । इसके विपरीत हिंदुओं ने भीतरी बरामदे पर अपना अनन्य कब्जा साबित किया है और इस बात को भी साबित किया है कि वे वहां पर उपासना के लिए जाते थे ।

वाद संख्या 4 की पोषणीयता –

611. विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री पारासरन ने सुनवाई के दौरान वाद संख्या 4 की पोषणीयता के विरुद्ध इस आधार पर ऐतराज किया कि वाद केवल किसी मुतवल्ली की तरफ से संस्थित कराया जा सकता था । उन्होंने दलील दी कि सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को वाद संस्थित कराने का अधिकार नहीं था । इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है । 1960 के उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम की धारा 19(2) विनिर्दिष्ट रूप से बोर्ड को किसी संपत्ति को पुन: प्राप्त करने के लिए उपाय अंगीकृत करने और वक्फ़ से संबंधित वादों को संस्थित कराने और उनकी प्रतिरक्षा किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त करती है । धारा 3(2) के अधीन बोर्ड को अधिनियम के अधीन गठित सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड या शिया सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के अर्थान्तर्गत परिभाषित किया गया है । इसलिए स्पष्टत: कानूनी निबंधनों के अनुसार सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को विधिक कार्यवाहियां संस्थित कराने का अधिकार प्राप्त है ।

ण.4 वाद संख्या 4 में परिसीमा

अभिवचन

612. वाद संख्या 4 के वादपत्र में कार्यवाहियां संस्थित कराए जाने के प्रयोजनार्थ वादकारण उन घटनाओं पर आधारित है, जो तारीख 23 दिसंबर, 1949 को घटित हुई थी और जिनके दौरान हिंदुओं की भीड़ द्वारा मस्जिद के भीतर मूर्तियों को रख दिया गया था । ऐसा किए जाने

का उद्देश्य मस्जिद को नष्ट करना, क्षति पहुंचाना और अपवित्र करना था । इसके अतिरिक्त वादियों के अनुसार मस्जिद में प्रवेश और मूर्तियों को रखे जाने के कार्य के परिणामस्वरूप मस्जिद का अपवित्रीकरण हो गया । यह वादपत्र के पैरा 11 में समाविष्ट प्रकथनों से स्पष्टत: प्रकट होता है :–

> "11. मुस्लिम उपरोक्त मस्जिद के शांतिपूर्ण कब्जे में रहे हैं और उन्होंने उसमें तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक नमाज अदा की, जब हिंदुओं की भारी भीड़ ने उक्त मस्जिद को नष्ट करने, क्षति पहुंचाने या अपवित्र किए जाने के शरारती आशय के साथ और तद्द्वारा मुस्लिम धर्म और मुस्लिमों की धार्मिक भावनाओं के अनादर के प्रयोजनार्थ मस्जिद में प्रवेश किया और मस्जिद के भीतर मूर्तियों को रखे जाने के द्वारा मस्जिद को अपवित्र कर दिया । हिंदुओं का यह आचरण अपराध गठित करता है, जो भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147, 295 और 448 के अधीन दंडनीय है ।"

उपरोक्त प्रकथन से संबंधित कथन पैरा 23 में समाविष्ट है, जो इस प्रकार है :–

> "23. हिंदुओं के विरुद्ध वाद फाइल करने का वादकारण इस माननीय न्यायालय की अधिकारिता के भीतर जिला फैज़ाबाद के अयोध्या में तारीख 23 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ, जब हिंदुओं ने अवैध और विधि विरुद्ध तरीके से मस्जिद में प्रवेश किया और उसको मूर्तियां रखे जाने के द्वारा अपवित्र कर दिया और इस प्रकार मुस्लिमों के अधिकारों अर्थात् नमाज अदा करने और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों के निर्वहन के अधिकार में व्यवधान और मध्यक्षेप किया । हिंदू कब्रिस्तान (गंज शाहिदान) और उसमें दफनाए गए मृत लोगों के प्रति फातिहा पढ़े जाने में भी मुस्लिमों के अधिकारों में व्यवधान उत्पन्न कर रहे हैं । इस प्रकार से कारित क्षतियां निरंतर रूप से जारी क्षतियां हैं और इन क्षतियों से उद्भूत होने वाले वादकारण का दिन-प्रतिदिन के आधार पर नवीकरण हो रहा है और जहां तक प्रतिवादी संख्या 5 से 9 के विरुद्ध वादकारण

का प्रश्न है, उनके विरुद्ध वादी को वाद फाइल करने का वादकारण तारीख 29 दिसंबर, 1949 को अर्थात् वह दिन जब फैज़ाबाद और अयोध्या के नगर मजिस्ट्रेट प्रतिवादी संख्या 7 ने वादग्रस्त मस्जिद को कुर्क कर लिया और उसका कब्जा रिसीवर प्रतिवादी संख्या 9 श्री प्रियदत्त राम को सौंप दिया, जिन्होंने उसका प्रभार तारीख 5 जनवरी, 1950 को ग्रहण किया, को उद्भूत हुआ ।

राज्य सरकार और उसके प्राधिकारियों प्रतिवादी संख्या 6 से 8 अपराधकर्ताओं को अभियोजित करने और मुस्लिमों के हितों की रक्षा करने के अपने कर्तव्य के निर्वहन में विफल रहे ।"

चूंकि यह वाद मूलवाद के रूप से फाइल किया गया था, अत: इस वाद में इस बाबत घोषणा की ईप्सा की गई कि वादपत्र के साथ संलग्न नक्शे में ए. बी. सी. डी. वर्णों द्वारा दर्शित संपत्ति सार्वजनिक मस्जिद है, जिसको बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है और उसके साथ संलग्न भूमि, जिसको ई. एफ. जी. एच. वर्णों द्वारा दर्शित किया गया है, सार्वजनिक मुस्लिम कब्रिस्तान है । प्रार्थना (ख) के द्वारा हिंदुओं द्वारा रखी गई मूर्तियों और उपासना की अन्य वस्तुओं को हटाते हुए मस्जिद और कब्रिस्तान का कब्जा दिलाए जाने की डिक्री की ईप्सा की गई है, 'यदि न्यायालय के विचार में कब्जा प्रदान किए जाने को उचित अनुतोष प्रतीत किया जाता है' । प्रार्थना (खख) के द्वारा वैधानिक रिसीवर को इस बाबत आदेशित किए जाने की ईप्सा की गई कि वह अप्राधिकृत ढांचों को हटाते हुए अनुसूची 'क' में वर्णित संपत्ति का कब्जा हस्तगत करे । प्रार्थना (खख) को तारीख 25 मई, 1995 के संशोधन द्वारा अंत:स्थापित किया गया था ।

लिखित कथन

613. परिसीमा के अभिवाक् का आश्रय विभिन्न लिखित कथनों में विनिर्दिष्ट रूप से लिया गया, जिनमें प्रथम और द्वितीय प्रतिवादियों के लिखित कथनों के पैरा 27 और 28 और अतिरिक्त लिखित कथन का पैरा 23 है । परिसीमा के अभिवाक् का आश्रय लिखित कथन के पैरा 35, जिसको प्रतिवादी संख्या 3 और 4 निर्मोही अखाड़ा और महंत रघुनाथ दास द्वारा फाइल किया गया; प्रतिवादी संख्या 10 अखिल

भारतीय हिंदू महासभा के लिखित कथन के पैरा 29; और अनेक अन्य हिंदू पक्षों के लिखित कथनों में भी लिया गया ।

दसवें प्रतिवादी ने तारीख 15 फरवरी, 1990 को लिखित कथन फाइल किया और वादपत्र के पैरा 23 से इनकार किया । उसने लिखित कथन के पैरा 29 और 79 में किए गए अतिरिक्त अभिवाकों में एक विनिर्दिष्ट अभिवाक् का आश्रय लिया कि यह वाद परिसीमा द्वारा बाधित है । लिखित कथन का पैरा 79 निम्नलिखित है :–

> "……..79. वाद को जिस प्रकार से विरचित किया गया है, यह केवल घोषणा के लिए फाइल किया गया वाद है और कब्जा प्रदान किए जाने के लिए अनुतोष इन शब्दों में 'यदि न्यायालय के विचार में …….' जिसका आशय यह है कि वादी कब्जे के अनुतोष की ईप्सा नहीं कर रहे हैं और इस अनुतोष को उन्होंने न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया है कि वह स्वप्रेरणा से कब्जा प्रदान करे । अत: यह कारण स्पष्ट है कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित था और इसीलिए कोई विनिर्दिष्ट प्रार्थना नहीं की गई ।"

लिखित कथन का पैरा 39 न्यायालय के तारीख 23 नवंबर, 1992 के आदेश के मतावलंबन में अंत:स्थापित किया गया । दसवें प्रतिवादी के लिखित कथन में संशोधन के परिणामस्वरूप एक प्रत्युत्तर फाइल किया गया किंतु उसमें भी लिखित कथन के पैरा 79 का कोई विनिर्दिष्ट खंडन समाविष्ट नहीं था ।

614. वाद तारीख 18 दिसंबर, 1961 को प्रस्तुत और फाइल किया गया था ।

615. वाद संख्या 4 के प्रथम वादी को निर्मोही अखाड़ा द्वारा संस्थित कराए गए वाद संख्या 3 में न्यायालय के तारीख 23 अगस्त, 1979 के आदेश के मतावलंबन में नवें प्रतिवादी के रूप में पक्ष बनाया गया था । इस वाद में प्रथम वादी की तरफ से अपने काउंसेल के माध्यम से यह कथन किया गया कि लिखित कथन, जो वाद संख्या 5 में प्रतिवादी संख्या 1 से 5 की तरफ से और वाद संख्या 3 में प्रतिवादी संख्या 6 से 8 की तरफ से पहले ही फाइल किए जा चुके हैं, को इस वाद में लिखित कथन के रूप में अंगीकृत किया जाता है । वाद संख्या 1

में सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को भी न्यायालय के तारीख 7 जनवरी, 1987 के आदेश के मतावलंबन में पक्ष बनाया गया था । वाद संख्या 1 में प्रतिवादी संख्या 1 से 5 द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन के पैरा 22 में इस बात को विनिर्दिष्ट रूप से अभिकथित किया गया कि तारीख 16 दिसंबर, 1949 तक नमाज अदा की गई । इसी प्रकार से वाद संख्या 3 में प्रतिवादी संख्या 6 से 8 की तरफ से फाइल किए गए लिखित कथन के पैरा 26 में यह भी अभिकथित किया गया था कि नमाज तारीख 16 दिसंबर, 1949 तक निरंतर रूप से अदा की गई । अत:, परिसीमा के विवाद्यक के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक है कि मामले में इस आधार पर अग्रसर हुआ जाए कि अंतिम नमाज तारीख 16 दिसंबर, 1949 को अदा की गई ।

उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी संख्या 20 की तरफ से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि :–

(i) घोषणा के वाद में 1908 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 120 लागू होता है और यदि उस वादकारण, जिसका उल्लेख पैरा 23 में किया गया है, को सही माना जाए, तो 6 वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् संस्थित कराया गया वाद परिसीमा द्वारा बाधित हो जाता है; और

(ii) यदि अनुच्छेद 120 के बाबत यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह लागू नहीं होता और यह भी अभिनिर्धारित किया जाता है कि अनुच्छेद 142 और 144 लागू होते हैं, तो भी वादकारण तारीख 16 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ और यह वादकारण निरंतर रूप से जारी दोष पर आधारित नहीं था । इसलिए, 12 वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् तारीख 18 दिसंबर, 1961 को फाइल किया गया वाद परिसीमा द्वारा बाधित है, चाहे दो दिन का विलंब ही क्यों न हो ।

616. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने धारा 145 के उपबंधों पर विचार करते हुए अभिनिर्धारित किया कि यह कार्यवाही न्यायिक प्रकृति की कार्यवाही नहीं होती और न ही मजिस्ट्रेट इन कार्यवाहियों में न्यायिक दृष्टिकोण से विचार करता है और यह कार्यवाही अचल संपत्ति से संबंधित

होती हैं । धारा 145 के अधीन कार्रवाई के परिणामस्वरूप न तो परिसीमा का विस्तार होता है और न ही इन कार्यवाहियों के आधार पर परिसीमा के संगणना के प्रयोजनार्थ किसी अपवर्जन को उपबंधित किया गया है । मजिस्ट्रेट द्वारा मात्र रिसीवर की नियुक्ति के आधार पर संपत्ति विधिक अभिरक्षा में चली जाती है और परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 के अर्थान्तर्गत किसी कब्जे के अंतर्गत नहीं रहती । संपत्ति की कुर्की के परिणामस्वरूप न तो संपत्ति स्वामी संपत्ति के कब्जे से बेकब्जा होता है और न ही उसका कब्जा समाप्त होता है । उच्च न्यायालय ने **देव कौर** बनाम **शिव प्रसाद सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का उल्लेख करते हुए इस सिद्धांत को अवेक्षित किया कि धारा 145 के अधीन कुर्की के आदेश के अनुसरण में संपत्ति विधिक अभिरक्षा में चली जाती है; चूंकि वह किसी निजी व्यक्ति के कब्जे में नहीं होती, इसलिए कब्जे की पुनर्स्थापना के लिए अनुतोष की ईप्सा किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती और केवल हक की घोषणा का अनुतोष ही पर्याप्त होता है । ऐसे मामलों में कब्जे का अनुतोष अपेक्षित नहीं होता क्योंकि कोई भी निजी प्रतिवादी इस स्थिति में नहीं होता कि वह वादी को कब्जा हस्तगत कर सके और मजिस्ट्रेट कुर्की की अवधि के दौरान उस पक्ष की तरफ से कब्जा धारण करता है, जिसे अंतत: न्यायनिर्णयन के पश्चात् कब्जे का हकदार पाया जाता है ।

617. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने विधिक स्थिति का उल्लेख करते हुए अभिनिर्धारित किया कि वाद संख्या 4 में फाइल किए गए वादपत्र में ऐसा कोई प्रकथन समाविष्ट नहीं है कि वादियों को उस संपत्ति से, जिसके वे कब्जे में थे, बेकब्जा कर दिया गया था । इसके विपरीत यह अभिवाक् किया गया कि मस्जिद के भीतर मूर्तियों को रखे जाने के द्वारा अपवित्रीकरण का कार्य किया गया था, जिसके कारण वादियों के नमाज अदा करने के अधिकार में व्यवधान उत्पन्न हुआ । इसके अतिरिक्त वह अनुतोष जिसकी ईप्सा वादियों द्वारा की गई, नमाज अदा किए जाने के अधिकार को जारी रखे जाने के प्रयोजनार्थ नहीं थी बल्कि

---

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 359.

मस्जिद के रूप में ढांचे की स्थिति की घोषणा के बाबत थी । विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि इन अभिवचनों के आधार पर मामला अनुच्छेद 142 के अधीन नहीं आता, चूंकि वादपत्र के पैरा 23 में समाविष्ट अभिवाक् विवादित संपत्ति के संबंध में वादियों के कब्जे की निरंतरता या उनके बेकब्जा का मामला गठित किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त नहीं थे । यह अभिनिर्धारित किया गया कि मस्जिद के भीतर मूर्तियों का रखे जाने से कब्जे से बेकब्जा किए जाने या कब्जे की निरंतरता को भंग किए जाने का मामला गठित नहीं होता, चूंकि ये संकल्पनाएं किसी व्यक्ति, जो पूर्व में कब्जे में था, को कब्जे से पूर्ण रूप से वंचित किए जाने को अनुध्यात करती हैं । यह अभिनिर्धारित किया गया कि व्यवधान या मध्यक्षेप कब्जे से बेकब्जा किए जाने या उसकी निरंतरता को भंग किए जाने को गठित नहीं करते । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उल्लेख किया कि यदि वादियों ने इस अभिवाक् को साबित नहीं किया कि उनको सुस्पष्टत: और स्पष्ट निबंधनों के अधीन बेकब्जा किया गया था या उनके कब्जे की निरंतरता को भंग किया गया था, तो न्यायालय इस कमी को किसी ऐसी बात को पढ़े जाने के द्वारा पूर्ण नहीं कर सकता, जो अभिवाक् में उपस्थित न रही हो ।

618. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपरोक्त कारणोंवश न तो अनुच्छेद 47 और न ही अनुच्छेद 142 लागू होते हैं । विद्वान् न्यायाधीश ने अनुच्छेद 120 के अधीन मामले पर विचार करते हुए उल्लेख किया कि वादकारण तारीख 23 दिसंबर, 1949 और 29 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ । वाद 6 वर्षों की परिसीमा की अवधि के परे संस्थित कराया गया था । इसलिए इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि क्या अंतिम नमाज तारीख 16 या 23 दिसंबर, 1949 को अदा की गई थी । वह तारीख, जिस पर अंतिम नमाज अदा की गई थी, कुछ प्रभाव की अवश्य हो सकती है, यदि अनुच्छेद 120 लागू न होता । अनुच्छेद 142 और 144 के अधीन किसी आवेदन की अनुपस्थिति में केवल अनुच्छेद 120 ही आकर्षित होगा और वाद को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया जाएगा ।

इस प्रश्न पर कि क्या निरंतर रूप से कोई दोषपूर्ण कार्य जारी था,

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि यदि वाद उपासना के अधिकार में व्यवधान के विरुद्ध अनुतोष की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया गया होता, तो अधिसंभाव्य रूप से 1908 के परिसीमा अधिनियम की धारा 23 के अधीन निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का सिद्धांत आकर्षित होता, विशेष रूप से **सर सेठ हुकुमचंद** बनाम **महाराज बहादुर सिंह**[1] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय को दृष्टि में रखते हुए । तथापि, वाद नमाज अदा करने के अधिकार के प्रवर्तन की ईप्सा करते हुए संस्थित नहीं कराया गया था बल्कि विवादित भवन के मस्जिद के रूप में स्थिति की घोषणा अभिप्राप्त किए जाने और कब्जेदार हकधारकों की हैसियत में कब्जा प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ संस्थित कराया गया था । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य और उस दोषपूर्ण कार्य के कारण निरंतर रूप से पड़ने वाले प्रभाव के मध्य विभेद किया जाना चाहिए । वादियों द्वारा किए गए अभिवाकों में समाविष्ट तथ्य यह उपदर्शित करते हैं कि उनको विवादित परिसर से तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को बेदखल कर दिया गया था और दोषपूर्ण कार्य तब पूर्ण हो गया, जब उनको संपत्ति से बेकब्जा किया गया । इस आधार पर विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि इस मामले में निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का सिद्धांत आकर्षित नहीं होता । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि वादियों की बेदखली मस्जिद के अपवित्रीकरण के साथ तारीख 23 दिसंबर, 1949 को पूर्ण हो गई थी और इसलिए परिसीमा के प्रयोजनार्थ वाद अनुच्छेद 120 द्वारा शासित होता था । वाद को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया गया था ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने अभिनिर्धारित किया कि वाद मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 के अधीन कुर्की के पश्चात् घोषणा की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया गया था । घोषणा की ईप्सा करने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया वाद निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य के सिद्धांत द्वारा शासित नहीं होता था और **राजा राजगन महाराजा जगजीत सिंह** बनाम **राजा प्रताप बहादुर सिंह**[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए

[1] (1933) 38 एल. डब्ल्यू. 306 (प्रिवी कौंसिल).

[2] ए. आई. आर. 1942 प्रिवी कौंसिल 47.

विनिश्चय को दृष्टि में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुच्छेद 120 लागू होगा । इसलिए विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि न तो अनुच्छेद 142 और न ही अनुच्छेद 144 लागू होते हैं । विद्वान् न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि वाद 1961 में संस्थित कराया गया था, फिर भी उसको 33 वर्षों के पश्चात् (वर्ष 1995 में) कब्जे की ईप्सा करते हुए अनुच्छेद 142 और 144 के अधिक्षेत्र के अंतर्गत लाए जाने हेतु संशोधित किया गया था । इन आधारों पर वाद को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया गया था ।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने इसके विपरीत अभिनिर्धारित किया और उनका यह मत था कि वाद संख्या 4 परिसीमा के भीतर था । विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ पांच कारण उपदर्शित किए कि वाद संख्या 3, 4 और 5 परिसीमा द्वारा बाधित नहीं थे, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

अत: वाद अधिसंख्य न्यायाधीशों (न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा) द्वारा परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया गया था; न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने इस विवाद्यक पर विपरीत मत व्यक्त किया था ।

काउंसेल के निवेदन

619. वाद संख्या 5 में वादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पारासरन ने न्यायालय के समक्ष दलीलों के दौरान निवेदन किया कि वाद संख्या 4 केवल परिसीमा अधिनियम की धारा 120 द्वारा शासित होगा और अनुच्छेद 142 और 144 लागू नहीं होंगे । उन्होंने अपने इस निवेदन के समर्थन में निम्नलिखित प्रतिपादनाएं प्रस्तुत कीं :–

(i) प्राथमिक अनुतोष, जिसकी ईप्सा वाद संख्या 4 [अनुतोष (क)] में की गई है, इस बाबत घोषणा है कि विवादित संपत्ति एक सार्वजनिक मस्जिद है और इसलिए वाद में नमाज अदा करने के अधिकार के प्रवर्तन के लिए किसी घोषणा की ईप्सा नहीं की गई;

(ii) जब कोई वाद किसी संपत्ति, जिसको धारा 145 के अधीन कुर्क किया गया है, के हक की घोषणा के लिए फाइल किया जाता

है, तो यह आवश्यक नहीं है कि कब्जा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ अनुतोष की भी ईप्सा की जाए, चूंकि प्रतिवादी कब्जे में नहीं है और वह कब्जा देने की स्थिति में भी नहीं है । कुर्की के अधीन संपत्ति के विधिक अभिरक्षा में होने के कारण रिसीवर उस संपत्ति का कब्जा उस पक्ष को देने के लिए बाध्य है, जो सिविल न्यायनिर्णयन के परिणामस्वरूप संपत्ति का हकदार अभिनिर्धारित किया जाता है;

(iii) कब्जे की ईप्सा के प्रयोजनार्थ प्रार्थना आवश्यक नहीं थी । चूंकि संपत्ति दिसंबर, 1949 से विधिक अभिरक्षा में थी और प्रार्थना केवल अनुच्छेद 120 द्वारा अधिरोपित 6 वर्ष की परिसीमा की अवधि के बाबत धोखा देने के लिए की गई थी;

(iv) परिसीमा का कानून विश्राम का कानून है;

(v) अनुच्छेद 120 के अधीन 6 वर्ष की अवधि की संगणना उस तारीख से की जानी होती है, जब वाद फाइल करने का अधिकार उद्भूत होता है और वाद फाइल करने का कोई अधिकार तब तक उद्भूत नहीं होता जब तक कि वाद में दावाधीन अधिकार उद्भूत नहीं होता और कोई अतिलंघन नहीं होता या अधिकार के अतिलंघन का स्पष्ट और असंदिग्ध आशय नहीं होता;

(vi) जैसाकि वादपत्र के पैरा 23 में अभिवचन किया गया है, वादकारण अभिकथित रूप से तारीख 23 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ जब हिंदुओं ने विधि विरुद्ध तरीके से मस्जिद में प्रवेश किया और उसके भीतर मूर्तियां रखे जाने के द्वारा उसको अपवित्र कर दिया और इस प्रकार मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा किए जाने में मध्यक्षेप कारित किया गया;

(vii) वादियों का पक्षकथन यह है कि उनके द्वारा जो क्षति बर्दाश्त की गई, वह निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य की प्रकृति की क्षति थी और वह कार्य ऐसा दोषपूर्ण कार्य नहीं था, जो अपवित्रीकरण की तारीख पर ही पूर्ण हो गया था । परिसीमा के वर्जन के प्रश्न पर यह अभिकथित किए जाने के द्वारा न्यायालय को विश्वास में लेने का प्रयास किया गया है कि वादकारण का

नवीकरण निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य को दृष्टि में रखते हुए होता रहा है;

(viii) वर्तमान मामले में निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का प्रश्न उद्भूत नहीं हो सकता । चूंकि संपत्ति विधिक अभिरक्षा में थी । इसलिए यह अवधारणा करते हुए (बिना स्वीकार किए) भी कि केंद्रीय गुंबद के नीचे मूर्तियों का रखा जाना निरंतर रूप से दोषपूर्ण कार्य था और इसलिए वह कार्य संपत्ति की कुर्की के साथ ही समाप्त हो गया; और

(ix) वादकारण तब उद्भूत हुआ, जब भीतरी बरामदे में मूर्तियों को रखा गया था । यह धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों के पहले उद्भूत हो गया था और इसलिए यह तथ्य कि मजिस्ट्रेट ने कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया, का यह अर्थ नहीं होगा कि परिसीमा आरंभ नहीं हुई थी ।

विश्लेषण

620. 1908 का परिसीमा अधिनियम और उसका पश्चात्वर्ती अधिनियम अर्थात् 1963 का परिसीमा अधिनियम, दोनों विश्राम के कानून हैं । परिसीमा का विस्तार या उसका अपवाद कानून में अनुध्यात होता है । इन उपबंधों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं :–

(i) धारा 4-11 (भाग 2)

(ii) धारा 12-25 (भाग 3), जो परिसीमा की अवधि के संगणना से संबंधित है;

(iii) धारा 26 (20 वर्षों में सुखाधिकार के अधिकार का अर्जन); और

(iv) धारा 27 (अनुसेवी मकान के उत्तरभोगी के लिए 20 वर्षों का उपांतरण) ।

अनुच्छेद 47

621. 1908 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 47 ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा फाइल किए गए वाद पर भी लागू होता है, जो 1898 की

दांडिक प्रक्रिया संहिता या 1906 के मामलतदार के न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत 'अचल संपत्ति के कब्जे के संबंध में' पारित किसी आदेश द्वारा या ऐसे किसी व्यक्ति के अधीन दावा करने वाले किसी व्यक्ति से आदेश के अंतर्गत संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए बाध्य होता है । परिसीमा की अवधि तीन वर्ष है और परिसीमा मामले में अंतिम आदेश की तारीख से आरंभ होती है । वाद अनुच्छेद 47 के अधीन पारित किए गए किसी आदेश के लागू होने के लिए प्रथम स्तंभ में विनिर्दिष्ट वर्णन के अनुरूप होना चाहिए । अन्य शब्दों में अनुच्छेद 47 केवल उस स्थिति में लागू होता है, जिसमें मजिस्ट्रेट ने अचल संपत्ति के कब्जे के संबंध में आदेश पारित कर दिया है । जब अचल संपत्ति के कब्जे के संबंध में कोई आदेश, जो धारा 145 के अधीन किसी कार्रवाई की विषयवस्तु नहीं है, पारित किया जाता है, तो वह वाद प्रथम स्तंभ में विनिर्दिष्ट वर्णन वाला वाद नहीं होगा । यह केवल तब होगा, जब मजिस्ट्रेट ने इस बाबत कोई आदेश पारित कर दिया हो कि वाद विनिर्दिष्ट वर्णन के अनुरूप होना चाहिए और उस स्थिति में अनुच्छेद 47 लागू होगा । तथापि, यद्यपि अनुच्छेद 47 आकर्षित नहीं होता, फिर भी कुर्की के आदेश द्वारा व्यथित कोई व्यक्ति अपने अधिकार की घोषणा के लिए फाइल कर सकता है । वह सिविल न्यायालय द्वारा अधिकार के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ कब्जे का हकदार हो जाएगा और मजिस्ट्रेट सिविल न्यायालय के आदेश के अनुसार कब्जा हस्तगत करने के कर्तव्याधीन होगा । वर्तमान मामले में धारा 145 के अधीन कब्जे के संबंध में किसी आदेश की अनुपस्थिति में अनुच्छेद 47 का उसकी स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए कोई उपयोजन नहीं है ।

अनुच्छेद 120, 142, 144

622. परिसीमा के वर्जन के बाबत अगला निवेदन, जिसके आधार पर यह दलील दी गई, यह है कि वाद संख्या 4 पर अनुच्छेद 120 लागू होता है । अनुच्छेद 120 उन वादों पर लागू होता है, जिनके फाइल किए जाने के बाबत अनुसूची में कहीं पर भी कोई परिसीमा अवधि उपबंधित नहीं की गई है । अनुच्छेद 120 अवशिष्ट (residuary) प्रकृति का उपबंध है । इसलिए अनुसूची में जहां पर कोई विनिर्दिष्ट उपबंध लागू

होता है, तो यथासंभव रूप से अवशिष्ट अनुच्छेद लागू नहीं होगा और यह केवल तब लागू होगा, जब वाद किसी अन्य उपबंध जिस पर अवशिष्ट उपबंध लागू होगा, में विनिर्दिष्ट वर्णन के अंतर्गत नहीं आता ।

623. दो परस्पर विरोधी अनुच्छेद, जिनका वादियों द्वारा अवलंब लिया गया, अनुच्छेद 142 और अनुकल्प में अनुच्छेद 144 है । अनुच्छेद 142 अचल संपत्ति के कब्जे के लिए फाइल किए गए वाद, जिसमें वादी को या तो संपत्ति के कब्जे से बेकब्जा कर दिया जाता है या उसने अपने कब्जे की निरंतरता को भंग कर दिया है, पर लागू होता है । बेकब्जा अस्वैच्छिक प्रकृति के कार्य को अनुध्यात करता है, जबकि कब्जे की निरंतरता को भंग किया जाना कब्जे की स्वैच्छापूर्वक समाप्ति की प्रकृति का कार्य है । वर्तमान मामले में वाद संख्या 4 के वादियों ने एक घोषणा की ईप्सा की है कि ए. बी. सी. डी. वर्णों द्वारा उपदर्शित संपत्ति एक सार्वजनिक मस्जिद है और ई. एफ. जी. एच. वर्णों द्वारा सीमांकित भूमि एक मुस्लिम कब्रिस्तान है । इसके अतिरिक्त वादियों ने कब्जा प्रदान किए जाने के बाबत भी प्रार्थना की है, यदि न्यायालय का यह विचार हो कि ऐसा अनुतोष उचित अवधारित किया जाता है ।

624. वह आधार जिसका अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि वाद संख्या 4 कब्जे के लिए फाइल किया गया वाद नहीं है, यह है कि इस न्यायालय ने **देवकौर** बनाम **शिव प्रसाद सिंह**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि ऐसे मामलों, जिनमें संपत्ति विधिक अभिरक्षा में है, यह आवश्यक नहीं कि कब्जा प्रदान किए जाने के लिए स्वतंत्र प्रार्थना की जाए । इसलिए यह दलील दी गई कि चूंकि कब्जे की ईप्सा करते हुए विनिर्दिष्ट प्रार्थना आवश्यक नहीं थी, इसलिए प्रार्थना (ख) निरर्थक है और वाद की प्रकृति का न्यायनिर्णयन केवल प्रार्थना (क) के संदर्भ में किया जाना चाहिए ।

इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता । **देवकौर** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय में यह अभिकथित किया गया है कि ऐसे मामलों, जिनमें संपत्ति विधिक अभिरक्षा में हो, यह पर्याप्त होगा कि हक की घोषणा की ईप्सा की जाए ।

---

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 359.

यही कारण है कि न्यायालय द्वारा नियुक्त रिसीवर, जो न्यायालय का अधिकारी होता है, उस पक्ष की तरफ से संपत्ति का कब्जा धारण करता है, जिसको मामले के न्यायनिर्णयन पर कब्जे का हकदार पाया जाता है । चूंकि रिसीवर उस व्यक्ति को कब्जा प्रदान करने के कर्तव्य द्वारा बाध्य होता है, जिसका हक संपत्ति के संबंध में न्यायालय के समक्ष साबित होता है, इसलिए कब्जे की ईप्सा करते हुए औपचारिक प्रार्थना आवश्यक नहीं होती । किंतु इस निवेदन में जिस बात की कमी है, वह यह है कि कब्जे के अनुतोष की ईप्सा करते हुए फाइल किए गए वाद को पोषणीयता की कमी वाला वाद अभिनिर्धारित नहीं किया गया है । हक की घोषणा का अनुतोष पर्याप्त होता है क्योंकि यदि संपत्ति विधिक अभिरक्षा में है, तो कब्जा आवश्यक रूप से न्यायालय द्वारा मामले का न्यायनिर्णयन किए जाने के पश्चात् घोषणा प्रदान किए जाने पर आधारित होता है । इसलिए कब्जे का अनुतोष अंतर्निहित अनुतोष होता है । यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि ऐसी प्रकृति का वाद, जहां संपत्ति विधिक अभिरक्षा में हो, को संभवत: कब्जे के लिए फाइल किया गया वाद अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता और इसलिए यह ऐसी दलील है, जिसका कोई विधिमान्य आधार नहीं है ।

625. यह निवेदन निम्नलिखित अनुमान पर आधारित है कि वाद संख्या 4 परिसीमा द्वारा बाधित है :–

(i) संपूर्ण शक्ति, जो वाद की विषयवस्तु है, धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप विधिक अभिरक्षा में थी;

(ii) यदि संपत्ति विधिक अभिरक्षा में होती है, तो घोषणा के लिए फाइल किया गया वाद पर्याप्त होगा और कब्जे के अनुतोष की ईप्सा किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती;

(iii) कब्जा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ डिक्री की ईप्सा करते हुए प्रार्थना (ख), 'यदि ऐसा किया जाना आवश्यक प्रतीत किया जाता है' निरर्थक है; और

(iv) परिणामस्वरूप, वाद कब्जे की प्रार्थना की अनुपस्थिति में केवल मस्जिद की प्रकृति की घोषणा के प्रयोजनार्थ फाइल किया

गया वाद है और इसलिए 1908 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 120 लागू होगा ।

वह आधार जिस पर उपरोक्त दलील आधारित है, यह है कि भीतरी और बाहरी बरामदों में स्थित संपूर्णता संपत्ति विधिक अभिरक्षा में थी और रिसीवर की रक्षात्मक कुर्की के अधीन थी । तथापि, तथ्यात्मक स्थिति यह है कि तारीख 18 दिसंबर, 1961 को जब वाद संस्थित कराया गया था, धारा 145 के अधीन पारित आदेश के मतावलंबन में केवल भीतरी बरामदे की कुर्की की गई थी । किंतु बाहरी बरामदा वर्ष 1982 में रिसीवर के अधीन किया गया था । वाद संख्या 4 में निम्नलिखित संपत्ति विवाद की विषयवस्तु थी :–

(क) भीतरी बरामदा, जिसको धारा 145 के अधीन कुर्क किया गया था;

(ख) बाहरी बरामदा, जिसको कुर्क किया गया था; और

(ग) संलग्न कब्रिस्तान, जिसको कुर्क किया गया था ।

626. वाद संख्या 4 दोनों क्षेत्रों (मस्जिद और कब्रिस्तान), जिनको धारा 145 के अधीन कुर्क कर लिया गया था और वे क्षेत्र जो स्पष्टत: कुर्की की विषयवस्तु नहीं थे, से संबंधित है । परिणामस्वरूप इस वाद में जिस घोषणा की ईप्सा की गई थी, मात्र उस भूमि के संबंध में नहीं थी, जो कुर्की के आदेश के अधिक्षेत्र के अंतर्गत आती थी । निम्नलिखित अनुतोष की ईप्सा की गई थी :–

(क) सार्वजनिक मस्जिद (भीतरी और बाहरी बरामदों, दोनों को सम्मिलित करते हुए) ए. बी. सी. डी. वर्णों द्वारा वर्णित संपत्ति और ई. एफ. जी. एच. वर्णों द्वारा चिह्नांकित कब्रिस्तान की घोषणा; और

(ख) ए. बी. सी. डी. वर्णों द्वारा चित्रित मस्जिद के क्षेत्र का कब्जा ।

इसके अतिरिक्त इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए कि प्रार्थना (खख) को संपूर्ण मस्जिद के ध्वंस के परिणामस्वरूप संशोधन

द्वारा अंतःस्थापित किया गया था और जिस अनुतोष की ईप्सा का दावा किया गया था, वह कानूनी रूप से नियुक्त रिसीवर, जिसको **इस्माइल फारुकी** वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के परिणामस्वरूप नियुक्त किया गया था, के विरुद्ध थी । उपरोक्त स्थिति को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि कब्जे का अनुतोष, जिसकी ईप्सा प्रार्थना (ख) के निबंधनों के अनुसार की गई थी, केवल उस संपत्ति के कब्जे, जो प्रार्थना द्वारा आच्छादित था, के क्षेत्र के संबंध में नहीं थी, बल्कि उस क्षेत्र के संबंध में भी थी, जो कुर्की की विषयवस्तु नहीं थी । यह स्थिति होने के कारण परिसीमा के वर्जन का अवलंब लेने वाले निवेदन का संपूर्ण आधार भ्रांति से ग्रसित है और इसको स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

627. वादपत्र के परिशीलन पर ज्ञात होता है कि वादियों की शिकायत यह थी कि वे कब्जे में थे और उन्होंने तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक नमाज अदा की थी । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि तारीख 23 दिसंबर, 1949 को हिंदुओं ने मूर्तियों को चुपचाप मस्जिद के भीतर स्थापित कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप मस्जिद अपवित्र हो गई । वादियों ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिवाक् करते हुए कि वे कब्जे में थे और उन्होंने एक विनिर्दिष्ट तारीख तक नमाज अदा की थी, जिसके आधार पर यह क्रम बनता है कि उस तारीख के पश्चात् वादियों का कब्जा समाप्त हो गया था । इस स्थिति में यह स्पष्ट हो जाता है कि वादियों को धारा 145 के अधीन कुर्की के अनुसरण में संपत्ति के विधिक अभिरक्षा में चले जाने के पूर्व कब्जे से बेकब्जा कर दिया गया था । वादियों ने इस पृष्ठभूमि में प्रार्थना (क) में मस्जिद की प्रकृति को सार्वजनिक मस्जिद की प्रकृति की मस्जिद घोषित की जाने की ईप्सा की और प्रार्थना (ख) में उसका कब्जा, यदि दिलाया जाना आवश्यक पाया जाए, की ईप्सा की । ऐसी स्थितियों में अनुतोष के लिए प्रार्थना को सूत्रबद्ध किया जाना अभिवचन की विधि में अज्ञात नहीं होता । ऐसा ही मामला **सी. नटराजन** बनाम **अशीम बाई**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ उद्भूत हुआ, जिसमें अनुतोषों को निम्नलिखित शब्दों में सूत्रबद्ध किया गया था :–

---

[1] (2007) 14 एस. सी. सी. 183.

"2. इस मामले के अपीलार्थी ने प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित अनुतोषों के लिए दावा करते हुए वाद फाइल किया –

"(क) वादग्रस्त संपत्ति के संबंध में वादी के हक की घोषणा के लिए;

(ख) वादग्रस्त संपत्ति के बाबत वादी के शांतिपूर्ण कब्जे और उपभोग में किसी भी प्रकार से मध्यक्षेप करने से प्रतिवादियों, उनके लोगों, अभिकर्ताओं, सेवकों इत्यादि को निषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ परिणामिक व्यादेश के लिए;

(ग) अनुकल्प में यदि यह माननीय न्यायालय किसी कारणवश इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वादी कब्जे के बाहर है, तो वादग्रस्त संपत्ति के रिक्त कब्जे की पुनर्प्राप्ति के लिए;

(घ) प्रतिवादी को इस वाद की लागत के संदाय के लिए निदेशित किए जाने के लिए ।"

इस न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए वादपत्र को अस्वीकृत किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किए गए आवेदन से उद्भूत कार्रवाई में अभिनिर्धारित किया कि इस प्रकार का कोई भी अभिवाक् किसी अतिरिक्त अनुतोष को अविधिमान्य नहीं बना सकता । न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की :–

"14. यदि वादी को कब्जे की पुनर्प्राप्ति का अनुतोष प्रदान किया जाना है, तो वाद 12 वर्ष की अवधि के भीतर फाइल किया जा सकता था । यह कहना एक बात है कि क्या पक्षों द्वारा साक्ष्य की अगुवाई किए जाने के पश्चात् ऐसा कोई अनुतोष प्रदान किया जा सकता है, किंतु यह कहना अन्य बात है कि वादपत्र को इस आधार पर अस्वीकृत किया जाना है कि वह किसी विधि द्वारा वर्जित है । इस वाद में, जिसे वादी के हक की घोषणा के परिणामिक अनुतोष की ईप्सा करते हुए कब्जे के लिए फाइल किया गया है, अनुच्छेद 58 लागू नहीं होगा ।"

इन परिस्थितियों में प्रस्तुत वाद अचल संपत्ति के कब्जे के लिए

फाइल किया गया है, जो अनुच्छेद 142 के प्रथम स्तंभ द्वारा उपबंधित वर्णन के अंतर्गत आता है । वाद तारीख 23 दिसंबर, 1949 को अभिकथित रूप से बेकब्जा किए जाने की तारीख के 12 वर्षों की अवधि के भीतर संस्थित कराया गया । ऊपर जो मत व्यक्त किया गया है, इस बाबत विवाद्यक कि क्या निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का मामला साबित होता है, की कोई सुसंगतता नहीं है । इस आधार पर कि वादकारण तारीख 23 दिसंबर, 1949 को पूर्ण हो गया था, यह स्पष्ट है कि वाद बेकब्जा किए जाने की तारीख से 12 वर्षों की अवधि के भीतर संस्थित कराया गया था । यह विवाद्यक मामले के उपरोक्त पक्ष को देखते हुए उद्भूत नहीं होता कि क्या निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य के परिणामस्वरूप निरंतर रूप से जारी क्षति कारित हुई ।

628. श्री पारासरन ने निवेदन किया कि वाद 1877 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के अधीन संपत्ति की प्रकृति की घोषणा के बाबत फाइल किया गया है और न कि संपत्ति के हक की घोषणा के बाबत । विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि वादपत्र के प्रार्थना (क) में, जैसीकि शब्द रचना घोषणा के लिए की गई है, वादपत्र के साथ संलग्न मानचित्र में ए. बी. सी. डी. वर्णों के भीतर दर्शित संपत्ति एक सार्वजनिक मस्जिद है । इस आधार पर यह दलील दी गई है कि प्रार्थना (क) के अधीन हक की घोषणा की ईप्सा नहीं की गई । इस निवेदन में कोई गुणागुण नहीं है । प्रार्थना (क) के अंतर्गत न केवल मस्जिद के विवादित ढांचे के संबंध में घोषणा की ईप्सा की गई है बल्कि उसके साथ संलग्न भूमि के बाबत भी घोषणा की ईप्सा की गई है । यह यथासंशोधित वादपत्र के पैरा 21ख, जो तारीख 6 दिसंबर, 1992 को मस्जिद के ध्वंस के परिणाम से संबंधित है, से भी स्पष्ट है । वादपत्र के पैरा 21ख में यह अभिवाक् समाविष्ट है कि विवादित ढांचे के ध्वंस के बाद भी भूमि के बाबत मस्जिद का स्वरूप बना रहा ।

629. वादी द्वारा वादपत्र में उल्लिखित वादकारण यह था कि मुस्लिम मस्जिद के शांतिपूर्ण कब्जे में थे और वे तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक नमाज अदा करते रहे, जब मस्जिद को नष्ट किए जाने, उसको नुकसान पहुंचाए जाने या अपवित्र किए जाने के प्रयोजनार्थ हिंदुओं की एक भीड़ उसमें प्रवेश कर गई और मस्जिद के भीतर मूर्तियां रखे

जाने के द्वारा उसको अपवित्र कर दिया । पैरा 11 में "तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक" अभिव्यक्ति न केवल मस्जिद में मात्र नमाज अदा किए जाने के तथ्य को पूर्ण करती है बल्कि कब्जे के तथ्य को भी पूर्ण करती है । इसलिए वादपत्र के पैरा 11 को पढ़े जाने पर यह उपदर्शित होता है कि वादियों का पक्षकथन यह था कि तारीख 23 दिसंबर, 1949 को मस्जिद में प्रवेश और उसके भीतर मूर्तियों को रखे जाने का कार्य मस्जिद को नष्ट किए जाने, उसको नुकसान पहुंचाए जाने और उसको अपवित्र किए जाने के लिए आशयित था और ऐसा किए जाने के द्वारा मस्जिद अपवित्र हो गई । इसके अलावा इस संदर्भ में पैरा 23 में यह अभिवचन भी किया गया है कि वादकारण तारीख 23 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ, जब मस्जिद को अपवित्र किया गया और मुस्लिमों की उपासना में मध्यक्षेप कारित किया गया । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि मस्जिद के भीतर तारीख 23 दिसंबर, 1949 को मूर्तियां रखे जाने के पश्चात् मस्जिद के परिसर के भीतर पुजारियों द्वारा मूर्तियों की उपासना की जाने लगी थी । इसलिए अनुच्छेद 11 में समाविष्ट अभिवाक् तारीख 23 दिसंबर, 1949 के पश्चात् मस्जिद में नमाज अदा किए जाने में मुस्लिमों के मार्ग में न केवल व्यवधान है बल्कि उस तारीख से उनको बेकब्जा करना भी है ।

630. भीतरी ढांचे को धारा 145 के अधीन पारित प्रारंभिक आदेश द्वारा तारीख 29 दिसंबर, 1949 को कुर्क किया गया था और रिसीवर ने तारीख 5 जनवरी, 1950 को प्रभार ग्रहण कर लिया था । वादियों के अभिवचन को संपूर्णता में पढ़े जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वादपत्र के पैरा 11 और 23 में जो प्रकथन किए गए हैं, मात्र ऐसे व्यवधान से संबंधित नहीं हैं, जो मुस्लिमों द्वारा मस्जिद के परिसर के भीतर नमाज अदा किए जाने के बाबत मूर्तियों को रखे जाने के द्वारा कारित किया गया था । मुस्लिमों का पक्षकथन यह था कि मस्जिद को मूर्तियां स्थापित किए जाने के कारण अपवित्र किया गया था । इसके अतिरिक्त यह तथ्य कि मस्जिद के परिसर के भीतर मूर्तियों को रखे जाने के पश्चात् केवल हिंदुओं द्वारा उपासना की जाती थी, से मुस्लिमों द्वारा कब्जा गवाए जाने का तथ्य उपदर्शित होता है । मामले का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे घटनाएं, जो तारीख 22/23 दिसंबर,

1949 को घटित हुई, के कारण वादी मस्जिद से बेकब्जा हो गए थे । इसलिए वादपत्र, जिसमें मात्र नमाज अदा किए जाने के बाबत व्यवधान के बारे में अभिकथन किए गए हैं, को मुस्लिमों की बेदखली के विरुद्ध परिवाद के रूप में पढ़ा जाना गलत होगा । तथ्यत: न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने चर्चा के दौरान उल्लेख किया कि मुस्लिमों को तारीख 23 दिसंबर, 1949 को बेकब्जा कर दिया गया था । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने निर्णय के पैरा 2439 में यह मताभिव्यक्ति की :–

> "... हमारे समक्ष उपस्थित मामले में वादियों द्वारा जिन तथ्यों के बाबत अभिवचन किए गए है, से यह उपदर्शित होता है कि उनको तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को विवादित परिसर से बेकब्जा कर दिया गया था और उनके विरुद्ध किया गया दोषपूर्ण कार्य पूर्ण हो चुका है, चूंकि तत्पश्चात् वे विवादित संपत्ति से पूर्णत: इस आधार पर बेदखल हैं कि उनका इस संपत्ति पर कोई हक नहीं है ।"

पैरा 2443 में इसी प्रकार की एक अन्य मताभिव्यक्ति अभिलिखित की गई :–

> "...घ. जब तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में केंद्रीय गुंबद के नीचे मूर्तियों को रखा गया था और विवादित संपत्ति से बेदखल किए गए मुस्लिमों के प्रवेश पर रोक लगाने के पश्चात् हिंदू शास्त्रीय विधियों के अनुसार नियमित पूजा आरंभ की गई थी ।"

विद्वान् न्यायाधीश द्वारा निकाले गए ये निष्कर्ष उनके द्वारा पूर्व में की गई मताभिव्यक्ति से इस आधार पर असंगत हैं कि संपत्ति से किसी को बेकब्जा नहीं किया गया था बल्कि नमाज अदा किए जाने में मात्र व्यवधान या मध्यक्षेप कारित किया गया था । तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्यरात्रि में केंद्रीय गुंबद के नीचे मूर्तियां रखे जाने के कार्य से मस्जिद प्रभावी रूप से अपवित्र हो गई थी । इस साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि मस्जिद के भीतर हिंदुओं की प्रार्थना और उपासना मूर्तियों को स्थापित किए जाने के पश्चात् आरंभ हुई । इस मामले में कब्जे से बेकब्जा किया गया था ।

631. इस स्थिति के कारण उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 120 के

उपबंधों को लागू करने में त्रुटि कारित की । वाद सारतः अनुच्छेद 142 द्वारा शासित होता था । यद्यपि अंतिम नमाज तारीख 16 दिसंबर, 1949 को अदा की गई थी, फिर भी उस दिवस को कब्जे से बेकब्जा नहीं किया गया था । अगले शुक्रवार की नमाज तारीख 23 दिसंबर, 1949 को अदा की जानी थी और उसी दिन कब्जे से बेकब्जा किए जाने की घटना घटित हुई और मस्जिद को अपवित्र किया गया । वाद तारीख 18 दिसंबर, 1961 को फाइल किया गया और यह वाद तारीख 23 दिसंबर, 1949 से 12 वर्षों की अवधि के भीतर फाइल किया गया और इसलिए परिसीमा के भीतर फाइल किया गया । वह विचार जिसे उच्च न्यायालय के अधिसंख्य न्यायाधीशों द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए व्यक्त किया गया है कि वाद संख्या 4 परिसीमा द्वारा बाधित है, सही नहीं है । वाद संख्या 4 परिसीमा के भीतर फाइल किया गया था । अनुकल्प में यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादी अनन्य या स्थिरीकृत रूप से भीतरी बरामदे के कब्जे में नहीं थे, तो वाद अनुच्छेद 144 के अधीन अवशिष्ट शक्तियों के अंतर्गत आ जाएगा और उस स्थिति में भी वाद परिसीमा के भीतर होगा ।

ण. 5 उपयुक्त विधिक अधिक्षेत्र और न्याय, समता और उत्तम विवेक

632. वर्तमान मामले के तथ्य तीन शताब्दियों से संबंधित हैं । इस न्यायालय का ध्यान मौखिक दलीलों के दौरान इतिहास के लिखित वृत्तांतों की ओर आकर्षित किया गया, जिनमें 16वीं और 17वीं शताब्दी में सम्राट बाबर के जीवन के बारे में अभिलिखित है । इस मामले में न्यायालय को इतिहास के पृष्ठों के परे ले जाते हुए पुरातात्विक साक्ष्य का अवलंब लिया गया है । पक्षों ने विवादित भूमि पर अपने अधिकारों को स्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ मानवीय इतिहास की घड़ी को विवाद की उत्पत्ति के बिंदु को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ विपरीत दिशा में घुमाया, जहां विवादित संपत्ति पर एक पक्ष का दावा बिना किसी प्रतिरक्षा के था : ताकि प्रथम अधिकार और प्रथम दोषपूर्ण कार्य को साबित किया जा सके । इस न्यायालय से यह अपेक्षा की गई है कि वह विवादित स्थल पर प्रार्थना, उसके बाबत प्रतिवाद, निर्माण और ध्वंस के एक हजार वर्षों से उद्भूत होने वाले विधिक परिणामों को विनिर्धारित करे ।

633. इस अवधि के दौरान विवादित संपत्ति विभिन्न शासकों और विधिक व्यवस्थाओं के अधिक्षेत्र के अंतर्गत आई । यह प्रश्न कि विवादित स्थल पर किस पक्ष, राजा या धर्म का प्रथम दावा साबित होता है, महत्वपूर्ण रूप से ऐतिहासिक रुचि का विषय है । किंतु इस न्यायालय को विनिर्धारित करना चाहिए कि वे कौन से विधिक परिणाम हैं, जो इस जांच से उद्भूत होते हैं । मानवीय इतिहास शासकों और व्यवस्थाओं के उत्थान और पतन का इच्छापत्र है । विधि का प्रयोग समय की घड़ी को वापस घुमाने के लिए और ऐसे प्रत्येक व्यक्ति, जो उस अनुक्रम से असहमत हैं, जिसका आश्रय इतिहास द्वारा लिया गया है को विधिक अनुतोष उपलब्ध कराने के प्रयोजनार्थ युक्ति के रूप में नहीं लिया जा सकता । आज के न्यायालय ऐतिहासिक अधिकारों और दोषपूर्ण कार्यों का संज्ञान नहीं ले सकते, जब तक कि यह दर्शित न कर दिया जाए कि उन ऐतिहासिक अधिकारों और दोषपूर्ण कार्यों के विधिक परिणाम वर्तमान में प्रवर्तनीय है । अत: इसके पहले कि यह न्यायालय विस्तारपूर्वक ऐतिहासिक जांच का अवलंब ले, उसके द्वारा उस सीमा पर विचार किया जाना आवश्यक है, जिस सीमा तक पूर्ववर्ती विधिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत किए गए कार्य और उद्भूत अधिकार आज की तारीख में वर्तमान विधियों के अंतर्गत परिणाम रखते हैं ।

634. वर्तमान मामले से संबंधित तथ्य चार सुभिन्न विधिक अधिक्षेत्रों के अंतर्गत आते हैं : (i) वर्ष 1525 ए.डी. के पूर्व के साम्राज्य, जिनके दौरान 'प्राचीन भूमिगत ढांचे' जो 12वीं शताब्दी के पूर्व के हैं, अभिकथित रूप से निर्मित किए गए; (ii) वर्ष 1525 और 1856 के मध्य मुगल शासन, जिसके दौरान विवादित स्थल पर मस्जिद का निर्माण किया गया था; (iii) वर्ष 1856 और 1947 के मध्य का काल, जिसके दौरान विवादित संपत्ति औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत आई; और (iv) स्वतंत्र भारत में 1947 के पश्चात् से वर्तमान तक का काल ।

635. वाद संख्या 5 में वादियों की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री वैद्यनाथन ने प्राचीन हिंदू ढांचे, जो विवादित स्थल पर भूमिगत है, की विद्यमानता पर अत्यधिक बल दिया । काउंसेल ने दलील दी कि इस ढांचे के अवशेषों का प्रयोग मस्जिद के निर्माण में किया गया था । हिंदू महासभा की ओर से उपस्थित श्री हरिशंकर जैन ने

दलील दी कि बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण के दौरान अयोध्या में विक्रमादित्य द्वारा निर्मित मंदिर को सम्मिलित करते हुए अनेक मंदिरों को नष्ट किया गया था । उन्होंने दलील दी कि मुगल काल के दौरान वह राज्यक्षेत्र जिसको वर्तमान में 'भारत' के नाम से जाना जाता है, 'विदेशी अधिपत्य' के अंतर्गत था – हिंदुओं को उनके धार्मिक अधिकारों का प्रयोग करने की अनुज्ञा नहीं थी और भारत के संविधान के अंगीकरण के साथ ही मुगलों द्वारा किए गए दोषपूर्ण कार्यों को दुरुस्त किया जाना चाहिए । इस दलील के मूल्यांकन के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक है कि उस सीमा पर विचार किया जाए, जिस तक हमारी विधि द्वारा किए गए कार्यों के विधिक परिणामों और पूर्ववर्ती विधिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत उद्भूत अधिकारों को मान्यता प्रदान करती है ।

राज्य के कार्य और प्रभुसत्ता में परिवर्तन

636. वे सिद्धांत, जो उस सीमा को अभिनिर्धारित करते हैं, जिस तक हमारे न्यायालय कार्यों के विधिक परिणामों और पूर्ववर्ती विधिक व्यवस्थाओं से उद्भूत होने वाले अधिकारों को प्रवर्तित कर सकते हैं, को प्रिवी कौंसिल द्वारा अभिकथित किया गया और इस न्यायालय द्वारा स्वतंत्रता के पश्चात् अंगीकृत किया गया है । **सेक्रेटरी आफ स्टेट आफ इंडिया इन काउंसिल** बनाम **कामाची ब्वाय साहाबा**[1] वाले मामले में तंजोर के राजा की मृत्यु तारीख 29 अक्तूबर, 1855 को हो गई थी, जिनका कोई विधिक वारिस नहीं था, इस कारणवश ईस्ट इंडिया कंपनी ने घोषणा की कि राजा का राज समाप्त हो गया और उसका विलय साम्राज्यवादी सरकार में हो गया । साम्राज्यवादी सरकार द्वारा 'तंजोर के नए प्रभुतासंपन्न' को एक पत्र लिखा गया, जिसके द्वारा पूर्ववर्ती शासक द्वारा धारित निजी और सार्वजनिक संपत्तियों की सूची उपलब्ध कराए जाने का अनुरोध किया गया, ताकि इन संपत्तियों के विरुद्ध किए गए दावों को निर्णीत किया जा सके । जब साम्राज्यवादी सरकार को इस पत्र का उत्तर प्राप्त नहीं हुआ, तो कंपनी के अधिकारियों ने 25वें तोपखाना रेजीमेंट की उपस्थिति का लाभ लेते हुए राजा की संपत्ति का कब्जा ले लिया और उसको अपने अधीन कर लिया और उसकी सुरक्षा के लिए

---

[1] (1857-60) 7 मू. आई. ए. (476).

संतरी नियुक्त कर दिए । इस मामले में तत्कालीन राजा की वरिष्ठतम विधवा ने मद्रास के उच्चतम न्यायालय के समक्ष पूर्ववर्ती राजा की निजी संपत्तियों के संबंध में वाद फाइल किया । उनकी तरफ से यह दलील दी गई कि राज्य के विलय हो जाने के पश्चात् राजा की केवल सार्वजनिक संपत्ति का अर्जन नए शासक द्वारा किया जा सकता था, जबकि राजा की निजी संपत्ति को उत्तराधिकार की हिंदू विधि के अनुसार वितरित किया जाना चाहिए था । प्रत्यर्थियों ने दलील दी कि राजा की संपत्ति का जब्त किया जाना नए प्रभुतासंपन्न के रूप में साम्राज्यवादी सरकार की तरफ से किया गया 'राज का कार्य था' । राज के विलय और तत्पश्चात् उसके जब्त किए जाने में केवल राजा और साम्राज्यवादी सरकार – दो प्रभुतासंपन्न शक्ति अंतर्वलित थे – और परिणामस्वरूप न्यायालय को इस मामले पर विचार करने की कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं है । इस दलील को स्वीकार करते हुए प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीश लार्ड किंग्सडाउन ने अभिनिर्धारित किया :–

> "किंतु इस पत्र का आशय चाहे कुछ भी हो ... इस पत्र से यह दर्शित होता है कि [साम्राज्यवादी] सरकार का आशय समस्त संपत्ति को जब्त करना था, जिसको वास्तव में जब्त किया गया, चाहे वह सार्वजनिक संपत्ति रही हो या निजी, परंतु साथ ही यह आश्वासन भी देना था कि वह संपूर्ण संपत्ति, जिसे अन्वेषण पर अनुचित रूप से जब्त किया गया पाया जाएगा, उसे वापस लौटा दिया जाएगा । किंतु, उस संपत्ति के संबंध में भी, जो राजा से संबंधित नहीं है, यह समझना कठिन है कि सरकार का आशय उन लोगों को विधिक निवारण का अधिकार प्रदान करना था, जो यह समझते थे कि उनके साथ दोषपूर्ण कार्य किया गया और राजनैतिक उपाय के निष्पादन में उनके अधिकारियों को उनके आचरण के बाबत विधिक अधिकरण के समक्ष निर्णय के लिए प्रस्तुत करना था ।
>
> ....
>
> माननीय न्यायाधीशों के विचार में इसका परिणाम यह हुआ कि वह संपत्ति, जिस पर दावा प्रत्यर्थी (वरिष्ठतम विधवा) द्वारा किया गया, को ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके प्रतिनिधि ईस्ट इंडिया

कंपनी के माध्यम से संप्रभुतासंपन्न संपत्ति के रूप में जब्त कर लिया गया; और इस प्रकार से किया गया यह कार्य, अपने परिणामों के साथ राज्य का कार्य है, जिसके ऊपर मद्रास का उच्च न्यायालय कोई अधिकारिता नहीं रखता ।

उस कार्य के औचित्य को साबित किए जाने या उसके विरुद्ध न्याय किए जाने के बाबत न तो न्यायिक समिति से नीचे के न्यायालय के पास कार्य करने के साधन है और न अभिव्यक्ति का अधिकार, यदि उन्होंने कोई अभिमत स्थिरीकृत कर भी लिया हो । यह या तो न्यायसंगत हो सकता है या अन्यायपूर्ण, राजनैतिक हो सकता है या नीति-विरुद्ध, लाभदायक हो सकता है या हानिकारक, यदि इस पर संपूर्णता में विचार किया जाए, तो वे, जिनके हित प्रभावित होते हैं । वे ऐसे विचार क्षेत्र के अधीन हैं, जिसमें न्यायाधीश प्रवेश नहीं कर सकते । यह कहना पर्याप्त होगा कि यदि कोई दोषपूर्ण कार्य किया भी गया है, तो यह ऐसा दोषपूर्ण कार्य है, जिसके संबंध में न्याय का कोई नगरपालिका न्यायालय न तो विचार कर सकता है और न ही अनुतोष प्रदान कर सकता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

637. राजा की संपत्ति जब्त करने की साम्राज्यवादी सरकार की कार्रवाई दो प्रभुतासंपन्न शासकों – साम्राज्यवादी सरकार और राजा के शासन वाले तंजोर राज्य के मध्य कार्रवाई थी । वाद मद्रास के उच्चतम न्यायालय अर्थात् साम्राज्यवादी सरकार का न्यायालय, जो साम्राज्यवादी सरकार की प्रभुतासंपन्नता से आहरण करता था, के समक्ष संस्थित कराया गया था । प्रिवी कौंसिल ने अभिनिर्धारित किया कि साम्राज्यवादी सरकार और साथ ही एक अन्य प्रभुतासंपन्न अस्तित्व (तंजोर के राजा) द्वारा की गई कार्रवाइयां राज्य द्वारा की गई कार्रवाइयां थीं और नगरपालिका न्यायालय उन कार्यों की वैधता को चुनौती देने वाले मामलों पर विचार नहीं कर सकते थे, जब तक कि साम्राज्यवादी सरकार स्वयं इस तथ्य को मान्यता प्रदान नहीं कर देता की मामला न्यायसंगत था । प्रिवी कौंसिल ने अभिनिर्धारित किया कि इस दावे कि साम्राज्यवादी सरकार ने इस बात को मान्यता प्रदान कर दी थी कि राजा की संपत्ति

के दावेदारों को विधिक अनुतोष प्रदान किया जाना चाहिए था, का समर्थन किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं था । साम्राज्यवादी सरकार द्वारा इस बाबत मान्यता के अनुपस्थिति में कि राज्य के कार्य के परिणाम नगरपालिका विधि में विधित: प्रवर्तनीय नहीं थे, नगरपालिका न्यायालय राज्य के कार्य के संबंध में फाइल किए गए वादों पर विचार नहीं कर सकते थे ।

638. वर्ष 1899 में प्रिवी कौंसिल द्वारा **थॉमस एंड जेम्स कुक** बनाम **सर जेम्स स्प्रिंग**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में इस सिद्धांत का अनुसरण किया गया । प्रत्यर्थियों ने अपील में पोंडोलैंड के देशज प्रधान द्वारा कतिपय करारों, जिनके द्वारा अपीलार्थी ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न के प्रतिनिधियों को भूमि और वनों पर रियायती अधिकार प्रदान किए गए थे, को चुनौती दी थी । प्रत्यर्थियों ने दलील दी कि ये करार पोंडोलैंड की तत्समय प्रवृत्त विधियों के प्रतिकूल थे । प्रिवी कौंसिल ने ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न को भूमि और अधिकार प्रदान किए जाने को 'पोंडोज़ के उच्चतम प्रधान' और ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न राज्य के कार्य अभिनिर्धारित किए, जिनको नगरपालिका न्यायालय के समक्ष पोंडो विधि के अतिक्रमण के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती थी । प्रिवी कौंसिल की तरफ से निर्णय पारित करते हुए लार्ड हॉल्सबरी ने अभिनिर्धारित किया :–

> "साम्राज्ञी द्वारा कब्जा लिया जाना, चाहे वह जब्तीकरण द्वारा लिया गया हो या किसी अन्य माध्यम द्वारा, जिसके द्वारा प्रभुसत्ता अर्जित की जा सकती थी, राज्य द्वारा किया गया कार्य था और सिगकाऊ (पोंडो प्रधान) को स्वतंत्र प्रभुतासंपन्न के रूप में माना जाना – उससे हक प्राप्त करने के लिए अपीलार्थी जो करने के लिए विवश हैं – यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि स्वतंत्र राज्यों द्वारा एक दूसरे के मध्य संव्यवहार, उन संव्यवहारों के मुकाबले में, जो नगरपालिका न्यायालयों द्वारा प्रशासित होते हैं, अन्य विधियों द्वारा शासित होते हैं । यह कहना उत्तर देना नहीं है कि प्रभुतासंपन्न, जो जब्तीकरण को स्वीकार करता है और सुपुर्द किए गए राज्यक्षेत्र के भीतर ऐसी निजी संपत्ति के संबंध में पूर्ववर्ती

---

[1] (1899) ए. सी. 572.

प्रभुतासंपन्न के कर्तव्यों और विधिक बाध्यताओं को धारण करता है, द्वारा निजी संपत्ति को अंतरराष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांतों द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है ... यदि समर्पण क्षमता और वह सरकार, जिसके सुपुर्द किया गया है, के मध्य या तो अभिव्यक्त या भली-भांति सोच-समझकर किया गया संव्यवहार है कि निजी संपत्ति को सम्मान प्रदान किया जाएगा और वह संव्यवहार है, जिसको प्रभुतासंपन्न कूटनीतिक दबाव के सामान्य अनुक्रम में प्रभुतासंपन्न के विरुद्ध प्रवर्तित किया जा सकता है ।"

639. कॉमन विधि सिद्धांत, जिसको प्रिवी कौंसिल द्वारा अंगीकृत किया गया, यह था कि नगरपालिका न्यायालय उस विधि को प्रवर्तित नहीं कर सकते, जो दो प्रभुतासंपन्न राज्यों के मध्य लागू होती है । प्रिवी कौंसिल ने स्पष्ट किया कि इस बात के बावजूद कि अंतरराष्ट्रीय विधि को इस बाबत स्पष्ट करना चाहिए कि क्या किसी नए प्रभुतासंपन्न को किसी पुराने प्रभुतासंपन्न की अधीनता उस पुराने प्रभुतासंपन्न की विधिक बाध्यताओं को स्वीकार करने के लिए विवश किया गया था, नगरपालिका न्यायालय नए प्रभुतासंपन्न द्वारा विधिक बाध्यताओं की अभिव्यक्त रूप से मान्यता की अनुपस्थिति में ऐसी विधिक बाध्यताओं को प्रवर्तित नहीं कर सकता । ऐसे मामलों, जिनमें किसी पूर्ववर्ती प्रभुतासंपन्न से नए प्रभुतासंपन्न में प्रभुतासंपन्नता के बाबत परिवर्तन हुआ है, नए प्रभुतासंपन्न के नगरपालिका न्यायालय ऐसे विधिक अधिकारों को नए प्रभुतासंपन्न द्वारा अभिव्यक्त रूप से मान्यता प्रदान किए जाने की अनुपस्थिति में पूर्ववर्ती प्रभुतासंपन्न के अधीन विद्यमान पक्षों के विधिक अधिकारों को प्रवर्तित नहीं करेंगे ।

640. पूर्ववर्ती व्यवस्था के अंतर्गत विद्यमान मालिकाना अधिकार के प्रश्न के उपरोक्त सिद्धांत की उपयोगिता पर प्रिवी कौंसिल द्वारा **सेक्रेटरी आफ स्टेट ऑफ इंडिया इन कौंसिल** बनाम **बाई राजबाई**[1] वाले मामले में वर्ष 1915 में दिए गए विनिश्चय में विचार किया गया था । इस मामले में अहमदाबाद के गायकवाड शासकों द्वारा अपील के प्रत्यर्थी को कस्बातिस नाम से पुकारे जाने वाले एक समूह का सदस्य होने के नाते कतिपय ग्रामों से किराया एकत्रित करने का अधिकार प्रदान किया

[1] आई. एल. आर. (1915) 39 बाम्बे 625.

गया था । वर्ष 1817 में अहमदाबाद जिला से गायकवाड शासकों को पृथक् कर दिया गया और यह जिला ब्रिटिश सरकार के शासनाधीन हो गया । तथापि, पृथक् किए गए राज्य क्षेत्रों के व्यावहारिक रूप से निपटारे का क्रियान्वयन वर्ष 1822-23 तक नहीं किया गया । जब राज्यक्षेत्र को पृथक् किया गया था, तब प्रत्यर्थी 17 ग्रामों के कब्जे में थे, किंतु उन्होंने साम्राज्यवादी बाम्बे सरकार को अपेक्षित कर का संदाय करने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि उनको (किराया एकत्रिकरण का) अधिकार पूर्ववर्ती शासक द्वारा प्रदान किया गया था । प्रत्यर्थी द्वारा श्री विलियम्सन द्वारा प्रस्तावित निपटारे को भी अस्वीकृत कर दिया गया और बाम्बे सरकार ने अंततः कस्बातिस के पक्ष में 'सरकार की अनुमति से' ग्रामों के अनेक पट्टे निष्पादित किए । प्रत्यर्थी ने यह दावा करते हुए एक वाद फाइल किया कि वह पट्टों की अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् नए पट्टे प्रदान किए जाने की विधितः हकदार हैं । लॉर्ड एटकिंसन ने प्रिवी कौंसिल की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह मताभिव्यक्ति की :–

> "उस कार्रवाई, जो बाम्बे सरकार द्वारा इन रिपोर्टों की प्राप्ति पर चारोडी ग्राम के संदर्भ में की गई, पर विचार किए जाने के पूर्व इस बात पर विचार किया जाना आवश्यक है कि वे संबंध सटीक रूप से क्या थे, जो कस्बातिस द्वारा उस समय, जब उनके राज्यक्षेत्र का अध्यर्पण प्रभावी हुआ, बाम्बे सरकार के साथ स्थापित किए गए थे और वे विधिक अधिकार क्या थे, जिनको उनके नए प्रभुतासंपन्न, जिसका कब्जा बाद में उनके पास आ गया था, के अधिकरणों में प्रवर्तित किया जाना था । <u>वे संबंध, जिसमें वे इस अध्यर्पण के पूर्व उनके मूल प्रभुतासंपन्न के साथ प्रविष्ट हुए और वे विधिक अधिकार, जिनका उन्होंने (मूल प्रभुतासंपन्न) के अधीन उपभोग किया, सिवाय एक लिहाज के, सर्वथा असुसंगत मामले थे । वे नई व्यवस्था के अंतर्गत विधिक अधिकारों, यदि कोई थे, जिनका वे पुरानी व्यवस्था के अंतर्गत उपभोग कर सकते थे, को नहीं ला सके । एकमात्र विधितः प्रवर्तनीय अधिकार, जिसको वे उनके नए प्रभुतासंपन्न के विरुद्ध प्राप्त कर सकते थे, वे थे और केवल वही थे जिनको उस नए प्रभुतासंपन्न ने अभिव्यक्त या सारगर्भित करार</u>

द्वारा या विधान द्वारा उनको प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ चुना था । निश्चित रूप से इस सारगर्भित करार को पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता था, जैसेकि वह तरीका जिसके द्वारा उन करारों पर विचार किए जाने, जिनको नए प्रभुतासंपन्न ने अंगीकृत किया, द्वारा पुराने अधिकारों को मान्यता और उनके संबंध में अभिव्यक्त या सारगर्भित निर्वाचन और उससे वे बाध्य थे और ऐसा मात्र यह विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ था कि क्या और किसी सीमा तक नए प्रभुतासंपन्न ने कस्ताबिस के इन अध्यर्पण विरोधी अधिकारों को मान्यता प्रदान की और उनके अधीन निर्वाचन किया या उनके अधीन सहमत होने के लिए बाध्य हुए कि इन अधिकारों की विद्यमानता, प्रकृति और सीमा पर विचार इस मामले में जांच के प्रयोजनार्थ सुसंगत विषय होंगे । यह सिद्धांत सुस्थापित है...

....

माननीय न्यायाधीशों के विचार में यदि एक क्षण के लिए विधान पर विचार न किया जाए, तो भी इस बात को साबित किए जाने का भार इस मामले में प्रत्यर्थी पर निर्भर है कि बाम्बे सरकार ने किसी को इस बाबत सहमति प्रदान की थी और यदि ऐसा किया था, तो किस सीमा तक । कस्बातिस वर्ष 1822 में इस स्थिति में नहीं थे कि वे श्री विलियमसन के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकते, तथापि, यह संभव है कि उन्होंने उस प्रस्ताव को नापसंद किया होगा या उन्होंने अपने प्राचीन अधिकारों का अवलंब लिया होगा । ये अधिकार मुकदमेबाजी के समस्त प्रयोजनों को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान में विद्यमान नहीं हैं और विधि के बिंदु को दृष्टि में रखते हुए जो एकमात्र विकल्प उनके समक्ष शेष रह गया था, यह था कि वे उनकी शर्तों को स्वीकार कर लें या बेदखल हो जाएं ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

641. गायकवाड शासकों द्वारा अहमदाबाद के राज्यक्षेत्र का साम्राज्यवादी सरकार के पक्ष में अध्यर्पण दो प्रभुतासंपन्न के मध्य राज्य

का कार्य था । राज्यक्षेत्र के अध्यर्पण पर नए प्रभुतासंपन्न के राज्यक्षेत्र के भीतर और परिणामस्वरूप नए प्रभुतासंपन्न के नगरपालिका न्यायालयों में नागरिकों के अधिकार मात्र वे अधिकार थे, जिनको नए प्रभुतासंपन्न द्वारा अभिव्यक्त रूप से मान्यता प्रदान की गई थी । जब तक कि नए प्रभुतासंपन्न द्वारा नागरिकों के अधिकारों, जो पुरानी व्यवस्था के दौरान विद्यमान थे, को मान्यता प्रदान नहीं कर दी जाती, नए प्रभुतासंपन्न के नगरपालिका न्यायालय उन प्राचीन अधिकारों को प्रवर्तित नहीं कर सकते थे । इसमें राज्यक्षेत्र के भीतर नागरिकों की संपत्ति के अधिकार भी सम्मिलित हैं । नए प्रभुतासंपन्न द्वारा नागरिकों के सांपत्तिक अधिकारों को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए या नहीं, यह ऐसा विवाद है, जिसको किसी सुपर राष्ट्रीय फोरम पर दोनों प्रभुतासंपन्न के मध्य हल किया जाना चाहिए और नगरपालिका न्यायालय ऐसे विवाद पर विचार नहीं कर सकते । नए प्रभुतासंपन्न द्वारा पुरानी व्यवस्था में पहले से मान्यता प्राप्त सांपत्तिक अधिकारों को मान्यता के स्पष्ट होने की आवश्यकता नहीं होती और ये अधिकार सारगर्भित हो सकते हैं । यद्यपि नए प्रभुतासंपन्न का आचरण पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । तथापि, पुरानी व्यवस्था में अधिकारों की विद्यमानता साबित किए जाने और नए प्रभुतासंपन्न द्वारा अधिकारों को मान्यता प्रदान किए जाने का भार उस पक्ष पर होता है, जो ऐसे अधिकारों का दावा करता है ।

642. लॉर्ड एटकिंसन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् अंगीकृत किया गया । पूर्ववर्ती रियासतों के शासकों द्वारा उनके राज्यक्षेत्रों के भारत सरकार के पक्ष में अध्यर्पण के कारण जनसामान्य को प्रदान किए गए अधिकारों से संबंधित विवाद बड़ी संख्या में उद्भूत हुए थे । इस न्यायालय से यह विनिर्धारण किए जाने की अपेक्षा की गई थी कि क्या वे अधिकार रियासतों के शासकों से भारत सरकार के पक्ष में प्रभुसत्ता में परिवर्तन के पश्चात् प्रवर्तनीय थे ।

643. इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा **प्रमोद चंद्र देब** बनाम

उड़ीसा राज्य[1] वाले मामले में रिट याचिकाओं के एक बंडल पर सुनवाई की गई थी । याचिकाओं में समाविष्ट तथ्य व्यापक रूप से एक दूसरे के समरूप थे : इन मामलों में याचियों ने रियासतों के शासकों से, इसके पहले कि वे भारत गणराज्य (तत्समय डोमिनियन आफ इंडिया) के पक्ष में अपने राज्यक्षेत्रों का अध्यर्पण करते, कतिपय मात्रा में नकद अनुदान या खोर पोश अनुदान प्राप्त कर लिए थे । यहां पर यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में उड़ीसा राज्य से यह अपेक्षित था कि वे खोर-पोश अनुदान उपलब्ध कराए जाने को सम्मिलित करते हुए रियासतों की पुरानी विधियों को प्रवर्तित करते । मुख्य न्यायमूर्ति बी. पी. सिन्हा ने प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चयों, जिन पर ऊपर चर्चा की गई है, को निर्दिष्ट करते हुए संविधान पीठ की ओर से निर्णय पारित करते हुए इस बाबत कतिपय सिद्धांत अधिकथित किए कि किसी नए प्रभुतासंपन्न के नगरपालिका न्यायालयों को कब पूर्ववर्ती प्रभुतासंपन्न के विधिक अधिक्षेत्र में पक्षों के लाभार्थ उद्भूत होने वाले अधिकारों को प्रवर्तित करना चाहिए :–

> "उन निर्णयज विधियों, जिन पर चर्चा की गई है या जिनको ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, का परीक्षण किए जाने पर निम्नलिखित प्रतिपादनाएं उद्भूत होती हैं : (1) 'राज्य का कार्य' उस राज्यक्षेत्र, जो तत्समय उसके राज्यक्षेत्र का भाग नहीं था, के संबंध में किसी राज्य द्वारा प्रभुतासंपन्न शक्तियों को अपने अधिकार में उस पर विजय प्राप्त किए जाने, संधि या अध्यर्पण या अन्यथा द्वारा लिया जाना होता है और इस बाबत यह कहा जा सकता है कि यह कार्य किसी विनिर्दिष्ट तारीख को किया गया, यदि इस प्रकार से अधिकार में लिए जाने के बाबत कोई उद्घोषणा या अन्य सार्वजनिक घोषणा की गई हो । (2) किंतु ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पूर्ण प्रभुतासंपन्न शक्तियों का अपने अधिकार में लिया जाना अनेक वर्षों की अवधि में परिव्याप्त हो सकता है ।...
>
> (5) चूंकि राज्य अपने कार्य के बाबत प्राधिकार नगरपालिका

---

[1] [1962] (सप्ली.) 1 एस. सी. आर. 405.

विधि से प्राप्त नहीं करता बल्कि अत्यधिक कानूनी या अति कानूनी माध्यमों से प्राप्त करता है, इसलिए नगरपालिका न्यायालयों के पास किसी ऐसे कार्य के औचित्य या वैधता का परीक्षण करने की कोई शक्ति नहीं होती, जो 'राज्य के कार्य' की परिधि के अंतर्गत आता हो ।

(6) क्या राज्य का कार्य सार्वजनिक या निजी अधिकारों के संदर्भ में किया जाता है और परिणाम वही रहता है अर्थात् वह कार्य किसी संव्यवहार के बाबत अधिकारों और दोषपूर्ण कार्यों के अन्वेषण के प्रयोजनार्थ नगरपालिका न्यायालयों की अधिकारिता के परे रहता है और जिसके आधार पर उद्घोषणा की जाती है कि ऐसा कोई न्यायालय अपने विनिश्चय, यदि कोई पारित किया गया हो, को प्रवर्तित नहीं कर सकता । यह संभव है कि यह उपधारणा की गई हो कि किसी नव अधिगृहीत क्षेत्र पर पूर्व में विद्यमान विधियां लागू होंगी और अंतरराष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांतों के अनुसार नागरिकों के निजी सांपत्तिक अधिकारों को नए प्रभुतासंपन्न द्वारा सम्मान प्रदान किया जाएगा, किंतु नगरपालिका न्यायालयों को ऐसी अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं को प्रवर्तित करने की बाध्यता नहीं होती ।

....

(8) नए प्रभुतासंपन्न द्वारा मान्यता प्राप्त नगरपालिका न्यायालयों को केवल उन्हीं अधिकारों का अन्वेषण और अभिनिश्चय करने की शक्ति और अधिकारिता प्रदान की जाती है, जैसेकि नए प्रभुतासंपन्न में विधान, करार या अन्यथा रूप से मान्यता या स्वीकृति प्राप्त किए जाने का निर्णय लिया जाना हो । (9) ऐसा कोई करार नए प्रभुतासंपन्न द्वारा उन अधिकारों पर विचार किए जाने के तरीकों से प्रकट होने वाली परिस्थितियों और साक्ष्य के आधार या तो अभिव्यक्त हो सकता है या सारगर्भित । इसलिए नगरपालिका न्यायालयों को इस बात का पता लगाने की अधिकारिता प्राप्त होती है कि क्या नए प्रभुतासंपन्न ने प्रश्नगत अधिकारों को या तो अभिव्यक्त या सारगर्भित रूप से मान्यता या स्वीकृति प्रदान की है या नहीं, जैसाकि ऊपर अभिकथित किया गया है । (1) नए प्रभुतासंपन्न के विरुद्ध अपेक्षित अधिकारों की

विद्यमानता के संबंध में किसी विवाद में साबित करने का भार दावाकर्ता पर होता है ताकि वह इस बात को साबित कर सके कि नए प्रभुतासंपन्न ने प्रश्नगत अधिकार को मान्यता या स्वीकृति प्रदान कर दी है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

644. संविधान पीठ ने प्रिवी कौंसिल द्वारा अधिकथित विधिक सिद्धांतों को उस तरीके को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ स्वीकार किया, जिसमें किसी पूर्ववर्ती विधिक व्यवस्था के विधिक परिणामों को मान्यता प्रदान की जाती है । महत्वपूर्ण रूप से इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि वे कार्य (पूर्ववर्ती विधिक व्यवस्था के कार्य) सार्वजनिक या निजी अधिकारों से संबंधित है । नगरपालिका न्यायालय केवल उन्हीं अधिकारों और दायित्वों को मान्यता प्रदान करेंगे, जिनको नए प्रभुतासंपन्न द्वारा अभिव्यक्त या सारगर्भित रूप से साक्ष्य द्वारा स्थापित आचरण द्वारा मान्यता प्रदान की गई है । नए प्रभुतासंपन्न के नगरपालिका न्यायालय इस बाबत जांच आरंभ किए जाने के बाबत मांग कर सकते हैं कि क्या नए प्रभुतासंपन्न में अभिव्यक्त या सारगर्भित रूप से किसी पूर्ववर्ती व्यवस्था के अधीन विद्यमान अधिकारों और दायित्वों को मान्यता प्रदान कर दी गई है । तथापि, ऐसे अधिकारों और दायित्वों की विद्यमानता को साबित किए जाने और उनको मान्यता प्रदान किए जाने का भार उस पक्ष पर होता है, जो उनके लिए दावा करता है ।

645. **प्रमोद चंद्र देब** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों की पुष्टि **गुजरात राज्य** बनाम **वोरा फिडाली बदरुद्दीन मीठीबारवाला**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा की गई । सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस दलील को अभिव्यक्त रूप से अस्वीकृत कर दिया कि पूर्ववर्ती प्रभुतासंपन्न द्वारा प्रदान किए गए अनुदान मात्र शून्यकरणीय है, जब तक कि नए प्रभुतासंपन्न द्वारा उन अनुदानों को अभिव्यक्त रूप से रद्द नहीं कर दिया जाता । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि इस प्रकार के अनुदान नए प्रभुतासंपन्न के नगरपालिका न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय

[1] [1964] 6 एस. सी. आर. 461.

नहीं होते, जब तक कि उनको नए प्रभुतासंपन्न द्वारा अभिव्यक्त या सारगर्भित रूप से मान्यता प्रदान नहीं कर दी जाती । इन सिद्धांतों की पुष्टि **पेमा चिबर** बनाम **भारत संघ**[1] और **भारत संघ** बनाम **सुधांशु मजूमदार**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय की पश्चात्वर्ती न्यायपीठों द्वारा की गई ।

646. इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य और दलीलों द्वारा चार सुभिन्न विधिक व्यवस्थाओं का समर्थन किया गया है । कृत कार्रवाइयों, सांपत्तिक अधिकारों को पूर्णता प्रदान किया जाना या पूर्ववर्ती विधिक व्यवस्थाओं में बर्दाश्त की गई क्षतियों के विधिक परिणामों को केवल इस न्यायालय द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है, यदि उनको पश्चात्वर्ती प्रभुतासंपन्नों द्वारा सारगर्भित या अभिव्यक्त रूप से मान्यता प्राप्त हो जाती है । इस प्रकार की मान्यता की अनुपस्थिति में प्रभुतासंपन्न का परिवर्तन राज्य का कार्य होता है और यह न्यायालय किसी पश्चात्वर्ती प्रभुतासंपन्न को किसी ऐतिहासिक दोष को मान्यता प्रदान करने या उसके बाबत अनुतोष प्रदान करने के लिए विवश नहीं कर सकता ।

पक्षों द्वारा दावा कृत प्राचीन अधिकार

647. वर्तमान कार्यवाहियों में विवादित संपत्ति के नीचे दबे हुए प्राचीन ढांचा, जो 12वीं शताब्दी के काल का है, की प्रकृति अत्यधिक विवाद की विषयवस्तु रही है । श्री वैद्यनाथन ने दलील दी कि यह ढांचा हिंदू मंदिर का प्रतिनिधित्व करता है । उन्होंने दलील दी कि विवादित संपत्ति के नीचे एक प्राचीन हिंदू मंदिर की विद्यमानता इस बात का साक्ष्य है कि विवादित भूमि का हक वाद संख्या 5 के वादी देवताओं में निहित है । उन्होंने आगे दलील दी कि चूंकि किसी देवता की भूमि अन्य असंक्राम्य (अहस्तान्तरणीय) होती है, इसलिए 12वीं शताब्दी से वादी देवताओं का हक विधित: आज तक प्रवर्तनीय बना हुआ है । इस दलील को स्वीकार किए जाने के प्रयोजनार्थ यह प्रदर्शित किए जाने की आवश्यकता होगी कि वह राज्यक्षेत्र, जिसके भीतर विवादित भूमि स्थित

---

[1] [1966] 1 एस. सी. आर. 357.

[2] (1971) 3 एस. सी. सी. 265.

है, के प्रत्येक पश्चात्वर्ती प्रभुतासंपन्न ने अभिव्यक्त या सारगर्भित रूप से वाद संख्या 5 के वादी देवताओं के हक को मान्यता प्रदान की है । इसको साबित करने का भार दृढ़तापूर्वक वाद संख्या 5 के वादियों पर होगा ।

648. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट का अवलंब लिए जाने के अतिरिक्त कोई अन्य दलील नहीं दी गई । वाद संख्या 5 के वादियों द्वारा इस दलील के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि यदि भूमि के नीचे दबे हुए ढांचे के बाबत यह विश्वास कर लिया जाए कि यह ढांचा एक मंदिर का ढांचा है, तो क्या इससे उत्पन्न होने वाले अधिकारों को पश्चात्वर्ती प्रभुतासंपन्नों द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी । विवादित संपत्ति के नीचे भूमि में दबे हुए किसी ढांचे की मात्र विद्यमानता आज की तारीख में हक के दावे के बाबत किसी विधित: प्रवर्तनीय दावे का कारण नहीं बन सकती । 12वीं शताब्दी में प्राचीन ढांचे के निर्माण के पश्चात् और मस्जिद के निर्माण के पूर्व चार सौ वर्षों की मध्यवर्ती अवधि विद्यमान है । विधिक अधिक्षेत्र की निरंतर रूप से जारी विद्यमानता या उसमें किसी परिवर्तन के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । सभी पक्षों द्वारा इस बात को स्वीकार किया गया है कि मुगल साम्राज्य के शासनकाल के दौरान विवादित स्थल पर किसी समय बिंदु पर एक मस्जिद का निर्माण किया गया था । यदि इस न्यायालय को यह अवधारणा करनी भी थी कि भूमि के नीचे दबा हुआ ढांचा वास्तव में एक हिंदू मंदिर था, जिसके कारण विवादित स्थल का हक वादी देवताओं में निहित होता है, तो भी वाद संख्या 5 के वादियों द्वारा इस बात को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि विधिक व्यवस्था के मुगल प्रभुतासंपन्न में परिवर्तन पर उनके अधिकारों को मान्यता प्रदान की गई थी ।

649. राज्यक्षेत्रों पर मुगलों की विजय दो प्रभुतासंपन्नों के मध्य एक अधिराष्ट्र का कार्य था, जिसके पश्चात् पूर्व विद्यमान अधिकारों को नए प्रभुतासंपन्न द्वारा मान्यता की अनुपस्थिति में विवादित संपत्ति का कोई दावा प्रभुतासंपन्न में परिवर्तन को दृष्टि में रखते हुए प्रवर्तित नहीं

किया जा सकता था । यह न्यायालय मात्र भूमि के नीचे दबे हुए 12वीं शताब्दी के कालखंड के मंदिर की विद्यमानता के आधार पर विवादित संपत्ति के अधिकारों पर विचार नहीं कर सकता या उन अधिकारों को प्रवर्तित नहीं कर सकता ।

650. ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा तारीख 13 फरवरी, 1856 को अवध, जो बाद में ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न की साम्राज्यवादी सरकार बन गया, के विलय के साथ ही विधिक व्यवस्था में अगला परिवर्तन किया गया । वे घटनाएं जो 1856 और भारतीय स्वाधीनता के मध्य और उसके पश्चात् घटित हुईं पर इस निर्णय के विभिन्न भागों में विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा और इस प्रक्रम पर हमारे द्वारा इस पर विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं है । तथापि, ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न द्वारा अधिकारों की मान्यता के संबंध में कतिपय तथ्यात्मक पहलुओं का उल्लेख किया जाता है । ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न द्वारा अवध के विलय पर भगवान राम के हिंदू श्रद्धालुओं को उपासना करने से या स्थानीय निवासी मुस्लिमों को विवादित संपत्ति में नमाज अदा करने से अपवर्जित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई कार्रवाई नहीं की गई । लॉर्ड कैनिंग द्वारा तारीख 15 मार्च, 1858 को उद्घोषणा करते हुए ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न द्वारा समस्त संपत्तियां कुछ चुनी हुई संपदाओं को अपवर्जित करते हुए, जब्त कर ली गईं और विवादित संपत्ति को नजूल भूमि (अर्थात् भूमि, जो जब्त की गई और सरकार में निहित की गई) के रूप में नामित कर दिया गया । तथापि, ब्रिटिश सरकार का आचरण विवादित स्थल पर दोनों धार्मिक समुदायों की प्रथाओं और प्रार्थना का सम्मान करना था । वर्ष 1858 में घेरे के निर्माण का प्रयोजन विवादित संपत्ति पर दोनों समुदायों को एक दूसरे से पृथक् रखने और विधि व्यवस्था को बनाए रखना था । यदि दोनों में से एक भी समुदाय विवादित स्थल पर उपस्थित नहीं होता, तो दोनों समुदायों को एक दूसरे से पृथक् रखने की आवश्यकता का प्रश्न भी कभी उद्भूत नहीं होता । तथापि, हिंदुओं ने भीतरी बरामदे से उनके अपवर्जन पर तुरंत और निरंतर रूप से विरोध करना जारी रखा । वर्ष 1877 में ब्रिटिश सरकार द्वारा बाहरी बरामदे की उत्तरी दिशा में एक अन्य द्वार खोला गया, जिसका नियंत्रण और प्रबंधन हिंदुओं को दे दिया गया ।

651. ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न और भारत गणराज्य के मध्य विधिक व्यवस्था के परिवर्तन के संबंध में निरंतरता की एक रेखा विद्यमान है । संविधान का अनुच्छेद 372 ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न और स्वतंत्र भारत के मध्य विधिक निरंतरता को समाविष्ट करता है । अनुच्छेद 372(1) में उल्लिखित है :–

> "372(1). अनुच्छेद 395 में निर्दिष्ट अधिनियमितियों का इस संविधान द्वारा निरसन होने पर भी, किंतु इस संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में सभी प्रवृत्त विधि वहां तब तक प्रवृत्त बनी रहेंगी जब तक किसी सक्षम विधान मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे परिवर्तित या निरसित या संशोधित नहीं कर दिया जाता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

संविधान के अनुच्छेद 296 में उल्लिखित है :–

> "296. इसमें इसके पश्चात् यथाउपबंधित के अधीन रहते हुए, भारत के राज्यक्षेत्र में कोई संपत्ति, जो यदि यह संविधान प्रवर्तन में नहीं आया होता तो राज्यगामी या व्यपगत होने से या अधिकारवान् स्वामी के अभाव में स्वामीविहीन होने से, यथास्थिति, हिज मजेस्टी को या किसी देशी राज्य के शासक को प्रोद्भूत हुई होती, यदि वह संपत्ति किसी राज्य में स्थित है तो ऐसे राज्य में और किसी अन्य दशा में संघ में निहित होगी ।"

संविधान के ये अनुच्छेद ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न और भारत गणराज्य के मध्य विधिक निरंतरता के साक्ष्य हैं । इसके अतिरिक्त, स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत गणराज्य का आचरण निजी संपत्तियों के दावों, जो ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न के शासन के दौरान विद्यमान थे, को मान्य ठहराना था । यह नहीं कहा जा सकता कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् अन्य बातों के साथ-साथ नागरिकों के मध्य समस्त पूर्व विद्यमान निजी दावों का शमन हो गया । उन पूर्व विद्यमान दावों को तब तक मान्यता प्राप्त थी जब तक कि भारत सरकार द्वारा पारित अभिव्यक्त

अधिनियमों द्वारा उनको उपांतरित या रद्द नहीं कर दिया गया । इसलिए हमारे समक्ष उपस्थित मामले के प्रयोजनार्थ इस बाबत दोनों प्रकार की मान्यताएं, अभिव्यक्त और सारगर्भित, प्रदान की गईं कि स्वतंत्र भारतीय प्रभुतासंपन्न ने निजी दावों को उन संपत्तियों के संबंध में मान्यता प्रदान की है, जो ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न के अधीन विद्यमान थीं, जब तक कि अभिव्यक्त रूप से अन्यथा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर दिया गया । इसलिए वर्तमान विवाद के पक्षों के अधिकार, जो साम्राज्यवादी व्यवस्था के दौरान उत्पन्न हुए थे, को इस न्यायालय द्वारा आज प्रवर्तित नहीं किया जा सकता ।

652. यह न्यायालय ऐसे दावों पर विचार नहीं कर सकता, जो वर्तमान में विधि न्यायालयों के समक्ष मुगल शासकों द्वारा हिंदू उपासना स्थलों के विरुद्ध की गई कार्यवाहियों के कारण उद्भूत हुए । यदि कोई व्यक्ति अनेक प्राचीन शासकों द्वारा की गई कार्यवाहियों के विरुद्ध सांत्वना या अनुतोष की ईप्सा करता है, तो ऐसे व्यक्ति के लिए विधि में कोई उत्तर नहीं है । हमारा इतिहास ऐसी कार्रवाइयों से परिपूर्ण है, जिसके बाबत यह निर्णय किया जा सकता है कि वे नैतिक रूप से गलत कार्रवाइयां थीं और आज भी उन कार्रवाइयों के कारण जोरदार वैचारिक बहस छिड़ सकती है । तथापि, संविधान का अंगीकरण एक ऐतिहासिक क्षण था जब हम, भारत के लोगों ने हमारी विचारधारा, हमारे धर्म, हमारी त्वचा के रंग या वह शताब्दी, जब हमारे पूर्वजों का इस भूमि पर आगमन हुआ और उन्होंने इस देश की विधि व्यवस्था को स्वीकार किया, के आधार पर अधिकारों और दायित्वों के विनिर्धारण से प्रस्थान किया । हमारी विधि व्यवस्था के अंतर्गत यह न्यायालय उन निजी संपत्तियों से संबंधित दावों का न्यायनिर्णयन कर सकता है, जिनको ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न द्वारा अभिव्यक्त या सारगर्भित रूप से मान्यता प्रदान की गई और तत्पश्चात् उन्होंने भारत की स्वतंत्रता में कोई मध्यक्षेप नहीं किया । जहां तक विवादित संपत्ति का संबंध है, यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न ने विवादित संपत्ति के संबंध में हिंदू और मुस्लिम, दोनों समुदायों को वर्ष 1856 में अवध के विलय पर मान्यता और उनकी विद्यमानता को अनुज्ञा प्रदान की थी । इस विलय के परिणामस्वरूप दोनों समुदायों के मध्य विधि और व्यवस्था को बनाए

रखे जाने के प्रयोजनार्थ एक घेरे का निर्माण किया गया था । वर्ष 1856 में अवध के विलय के पश्चात् पक्षों के कार्यों के परिणामस्वरूप वर्तमान वादों में पक्षों के विधिक अधिकार निरंतरता के आधार पर सृजित हुए और यही वे कार्य हैं, जिनका मूल्यांकन इस न्यायालय को वर्तमान विवाद को निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ करना चाहिए ।

न्याय, समता और सद्विवेक

653. वाद संख्या 4 में वादियों की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. राजीव धवन ने दलील दी कि वर्तमान मामले में लागू विधि की सारभूत अंतर्वस्तु 'न्याय, समता और सद्विवेक' है । डा. धवन ने दलील दी कि यद्यपि वर्तमान विवाद के कतिपय पहलू कानूनी अवसंरचना के अंतर्गत आते हैं, फिर भी निश्चायक विधि में महत्वपूर्ण अंतर उपस्थित हैं, जिनको न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत लागू करते हुए भरा जाना चाहिए ।

654. इस दलील का अर्थ यह है कि न्यायालय को वर्तमान विवाद, जो चार भिन्न-भिन्न विधि व्यवस्थाओं – विक्रमादित्य, मुगल, ब्रिटिश और वर्तमान विधि व्यवस्था का साक्षी बना, की उत्पत्ति के प्रति सावधान रहना चाहिए । पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों का मूल्यांकन करते हुए और संभावित निष्कर्ष पर पहुंचते हुए न्याय की यह आवश्यकता है कि इस मामले में असंख्य परस्पर विरोधी हितों के टकराव के अतिरिक्त विलक्षणताओं को विनिर्दिष्ट रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए । यह मामला विधि व्यवस्था, धर्म और विधि और एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष पर विजय का प्रचार-प्रसार करने वाला मामला है । इन बातों को वर्तमान तथ्यों पर लागू होने वाली उपलब्ध कानूनी अवसंरचना के भीतर नहीं समझा जा सकता । यहां पर न्यायालय की भूमिका अस्तित्व में आ जाती है और उसको अधिक संवेदनशील होना चाहिए चूंकि उसको ऐसा अनुतोष सृजित करना चाहिए, जो न्याय, समता और सद्विवेक के अनुकूल हो ।

655. 'न्याय, समता और सद्विवेक' पर चर्चा के प्रयोजनार्थ कुछ प्रारंभिक प्रश्न उद्भूत होते हैं – (i) यह संकल्पना कैसे उद्भूत हुई? (ii) इसका क्या आशय है ? और (iii) इस संकल्पना के बाबत भारतीय

अनुभव क्या था ? डनकन डैरेट ने 'न्याय, समता और सद्विवेक' नामक एक निबंध में उन कठिनाइयों के बारे में उल्लेख किया है, जो ऐसी किसी संकल्पना, जिसकी रूपरेखा अस्पष्ट हो, पर होने वाली चर्चा को पंगु बना देते हैं :–

> "आरंभिकत: यह दलील दी जा सकती है कि 'न्याय समता और सद्विवेक' उत्तम और सुविधाजनक सूत्र हैं, जिसका अर्थ होता है जितना ज्यादा या उतना कम, जैसाकि न्यायाधीश तत्समय इसका अर्थान्वयन करने में सावधानी बरतते हैं । प्रत्येक व्यक्ति को अपने क्रियाकलापों को इस बाबत विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ सीमित रखना चाहिए कि न्यायाधीशों ने तथ्यत: किस प्रकार से निर्देश का अर्थान्वयन किया है ताकि उस पर विचार किया जा सके । यदि ऐसा न किया गया, तो परिणाम स्थाई मूल्य के नहीं होंगे और वे बिल्कुल उसी प्रकार से जैसेकि लोक नीति की संकल्पना वर्षों और स्थान के साथ-साथ परिवर्तित होती रहती है, इसलिए निर्णयज विधियों से ऐसे मामलों में अधिक सहायता प्राप्त नहीं होती, जिनमें इस वाक्यांश को लागू किया जाता है । हमको इस बात पर तुरंत सहमत होना चाहिए कि 'अवशिष्ट' या 'प्रतिकूल' निदेशों के न्यायिक उपयोजन के मर्म में परिसीमा होती है । अत्यधिक कम मामलों में इस बाबत वास्तविक जिज्ञासा दर्शित होती है कि वाक्यांश का अर्थ क्या है, अनेक अभिव्यक्तियां अनवधानतावश स्थान प्राप्त कर लेती हैं और परिणामस्वरूप वे प्राधिकारवान् नहीं होती । किंतु किसी सूत्र के प्रतिनिधिक उपयोजन के सर्वेक्षण और उसके असाधारण इतिहास के पुनर्विलोकन से मामले को सही परिप्रेक्ष्य, जिसके द्वारा यह दर्शित होता हो कि उसको अभी भी विकासशील देशों की विधिक प्रणालियों के विकास में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करना है, में रखे जाने में सहायता प्राप्त हो सकती है ।"[1]

---

[1] डा. जे. डंकन एम. डेरेट द्वारा लिखित जस्टिस इक्विटी एंड गुड कांशेंस इन चेंजिंग ला इन डेवलपिंग कंट्रीज़ (जे. एन. डी. एंडरसन संस्करण) पृष्ठ 120.

[*] सर जॉर्ज रैंकिन द्वारा लिखित द पर्सनल ला इन ब्रिटिश इंडिया, सर जॉर्ज बिर्डवुड मेमोरियल लेक्चर तारीख 21 फरवरी, 1941.

साम्या और रोमैनो-कैनोनिकल उत्पत्ति

656. यह सामान्य भ्रांति है कि शब्द 'न्याय, साम्या और सद्विवेक' की उत्पत्ति इंग्लिश विधि में हुई । सर जॉर्ज रैंकिन ने संक्षेप में अभिकथित किया है कि 'न्याय, समता और सद्विवेक' की उत्पत्ति इंग्लिश विधि में नहीं हुई ।* इसके बजाय रोमैनो कैनोनिकल अध्ययन यूरोपियन महाद्वीप में सामान्य था और बाद में 16वीं शताब्दी के इंग्लिश जनों के मध्य भी परिचालित हुआ, जो इस संकल्पना का उद्गम स्थान सृजित करता है । अरस्तू ने **'एथिक्स'**** नामक अपने मौलिक लेख में साम्या और न्याय के मध्य संबंधों पर विचार किया है । यद्यपि साम्या कड़ाईपूर्वक न्याय के सदृश्य नहीं होती, फिर भी यह एक प्रकार का न्याय होती है । उनके अनुसार जहां पर लिखित कानून मामले की विशिष्ट परिस्थितियों को संबोधित करने के प्रयोजनार्थ असुसज्जित होता है और शुद्धतः न्यायसंगत परिणाम की ओर इंगित करता है, तो एक्विटाज़ (अर्थात् साम्या निष्पक्षता) प्रभाव में आ जाती है । लिखित विधि का पालन अनुचित परिणाम की ओर ले जाने वाला हो सकता है । इस विचार से जहां कतिपय कारक किसी मामले के तथ्यों को भिन्न स्थिति में रखते हैं, जैसेकि लोकनीति, तो यह अनुचित होगा कि सामान्यतः अभिव्यक्त किए गए विधिक परिणाम अधिरोपित किए जाएं । परिणामस्वरूप (अरस्तू के अनुसार) लिखित विधि से प्रस्थान अनुज्ञेय होता है । यह प्रस्थान कतिपय विचारणाओं के उन्नयन के विनिर्दिष्ट प्रयोजन की पूर्ति करता है, जो न्यायसंगत और समतापूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ तथ्यात्मक मैट्रिक्स को सूचित करता है । यह धारणा समता की पश्चिमी विधिक परंपरा की प्रेरणा और आधारशिला थी ।*

657. डैरेट ने अभिलिखित किया है कि उपरोक्त धारणा ने रोमन प्रतिपादनाओं को दो प्रकार से प्रभावित किया – (i) समता कानून के निर्वचन के दौरान उसको शुद्ध किए जाने, उपांतरित किए जाने और यदि आवश्यक हो, तो संशोधित किए जाने के प्रयोजनार्थ ; और (ii) लिखित

** अरस्तू द्वारा लिखित एथिक्स, जे. ए. के. थॉम्सन द्वारा अनुवादित (लंदन, पेंगुइन, 1976) पृष्ठ 198-200.

* मैक्स हेमबर्गर, मोराल्स एंड ला – द ग्रोथ ऑफ अरस्तू लीगल थ्योरी (1965).

या अन्यथा रूप से अभिनिश्चित विधि की कमियों को दुरुस्त किए जाने के प्रयोजनार्थ सहयोगी की भांति कार्य करता है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समता की भूमिका को निम्नलिखित शब्दों में सूत्रबद्ध किया गया है :–

> "यदि हम न्याय्य (न्याय) को समता के सहायक के रूप में देखते हैं तो न्याय्य में निश्चायक विधि समाविष्ट होती हैं, जो लिखित और अलिखित स्रोतों, कानूनों और रूढ़ियों द्वारा निर्मित होती हैं और इस निश्चायक विधि का उपयोग स्वयमेव निश्चायक विधि या नैसर्गिक साम्या अर्थात् मामले के नैसर्गिक कारणों द्वारा विनिर्धारित किया जाता है । किंतु अन्य भाव में समता न्याय के परिदृश्य पर उपस्थित हो जाती है । व्यावहारिकता में न्याय उसके जोड़ीदार अर्थात् अन्य भावों में समता के बिना नहीं हो सकता (i) जो किसी वाद की परिस्थितियों को उपांतरित या संशोधित करता है । कड़े कानून हों या उच्चतम अधिकार, कानून का उत्तरार्ध बहुत सीमित हो सकता है, यदि कभी हिस्सेदारी 'समता' की सहायता के बिना आगे बढ़ें । अत: भाव (i) में हिस्सेदारी न्याय द्वारा बाध्य होती है और फिर भी परिभाषा द्वारा उसका अतिरिक्त परिवर्धन प्रतीत होती है । इस शब्द के द्वितीय भाव में हिस्सेदारी निश्चायक विधि द्वारा छोड़े गए अंतरालों को भर देती है । यह उन मामलों में लिखित या अलिखित कानून की पूर्ति करती है, जो कानून द्वारा आच्छादित नहीं होते, उदाहरण के लिए या अनेक शब्दों में रूढ़ियों द्वारा अनुध्यात । भाव (ii) हिस्सेदारी विधि का अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत है, विशेष रूप से विकासशील देशों के लिए । इस भाव में हिस्सेदारी लिखित और अलिखित, दोनों विधियों के लिए है ।"*

658. विधि और न्याय के मध्य सह-संबंध को परिभाषित करने वाला तथ्य यह है कि – एक भाव में साम्या न्याय प्रदान करने के प्रयोजनार्थ किसी न्यायालय के समक्ष विशिष्ट परिस्थितियों को संबोधित

---

* डा. जे. डंकन एम. डैरेट, जस्टिस इक्विटी एंड गुड कांशेंस इन चैंजिंग ला इन डेवलपिंग कंट्रीज़, (जे. एन. डी. एंडरसन संस्करण) पृष्ठ 120.

किए जाने के लिए लागू विधि को उपांतरित करती है या उसकी उपयुक्तता को सुनिश्चित करती है । किसी भी मामले की परिस्थितियों में सामान्य नियम का मार्गदर्शन साम्या के उपांतरण द्वारा होता है, न कि निश्चायक विधि के अनादर या उसको अस्वीकृत किए जाने के द्वारा । यह (साम्या) निश्चायक विधि को पूर्णता प्रदान करती है, किंतु उसको स्थानापन्न नहीं करती । तथापि, दूसरे भाव में ऐसे मामलों, जिनमें निश्चायक विधि लागू विधिक सिद्धांतों के मुकाबले मौन है, समता स्वयमेव विधि के स्त्रोत के रूप में प्राथमिक भूमिका ग्रहण कर लेती है । समता उन अंतरालों को भरने का कार्य करती है, जिनसे निश्चायक विधि अदृश्य हो जाती है । अत:, ऐसे मामलों जिनमें कोई निश्चायक विधिक दृश्यमान नहीं होती, न्यायालय लागू विधि के स्त्रोत के रूप में समता का आश्रय लेते हैं । इसके अतिरिक्त डैरेट ने यह उल्लेख भी किया है कि एक तीसरा भाव भी उपलब्ध है, जिसमें समता या समानता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है – जिसमें स्थापित राजनैतिक प्राधिकार को छीन लिया जाता है या वह संदेहास्पद हो जाता है और विधि के औपचारिक स्त्रोत भी संदेहास्पद हो जाते हैं, तब न्यायिक पद की प्रकृति से उत्तम और निष्पक्ष रूप से विनिश्चय की अपेक्षा की जाती है । यह स्थिति विधवाओं अनाथों से संबंधित एक विनिश्चय में और व्यापार विधि के अधिक्षेत्र में उद्भूत हुई थी ।

659. ऊपर उल्लिखित तीनों भावों में समता ने न्यायाधीशों को विधि के सामान्य सिद्धांत अंगीकृत करने के लिए विवेकाधिकार प्रदान किया ताकि वे उनके समक्ष उपस्थित होने वाली विशिष्ट परिस्थितियों में किसी न्यायसंगत विनिश्चय पर पहुंच सकें । तथापि यह विवेकाधिकार निरंकुश नहीं था । डैरेट ने न्यायत: उल्लिखित किया है :–

> "इस अधिकारिता का अर्थ क्या है ? क्या इसका अर्थ यह है कि न्यायाधीश ने अपने अभिमान को ऊपर रखें और अपनी पसंद का निर्णय पारित करें ? नहीं ... इस बात पर बारंबार जोर दिया जाता है कि न्यायाधीश विधि के अनेक सदृश्य उपबंधों, न्यायिक सिद्धांतों, विशेष रूप से उन सिद्धांतों, जो कॉर्पस ज्यूरिस (न्यायविधान संग्रह) में समाविष्ट हैं, पर विचार करते हैं, यद्यपि

उन्होंने विधि या समता के लिखित स्त्रोतों को किसी ऐसे मामले में लागू न किया गया हो; और न्यायविदों द्वारा लिखी गई पुस्तकें विधिक विचारणा में तर्कहीन हो गई हों ।

......

... प्रथम कार्रवाई यह देखना होगा कि क्या संहिता के अन्य उपबंध समस्या पर सामान्य रूप से कोई प्रकाश डालते हैं । यह सही लिखा है ... के निर्वचन का तात्पर्य है ... अत: अनेक मामलों में समता विधि के विचार-विमर्श को अंतर्वलित करती है ..."*

इस भाव में निश्चायक विधि और निश्चायक विधि द्वारा उपलब्ध कराए गए सामान्य सिद्धांत इस बात को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ उपयोगी मार्गदर्शक की भांति सेवा प्रदान करते हैं कि समता मात्र न्यायाधीशों के व्यक्तिगत वैश्विक ज्ञान को महत्व प्रदान करने का माध्यम नहीं है । जहां निश्चायक विधि मौन होती है, समता विधि का स्रोत उपलब्ध कराए जाने के प्रयोजनार्थ प्रभावी हो जाती है, उसकी अंतर्वस्तु को विधि के सदृश्य उपबंधों द्वारा संसूचित किया जाता है, जो उपयोगी मार्गदर्शन प्रदान करते हैं । यह इस बात को सुनिश्चित करता है कि समता मूल्यों द्वारा संसूचित विधिक अवसंरचना के भीतर क्रियान्वित होती है, जिसको उन मूल्यों द्वारा सूचित किया जाता है, जो संपूर्ण विधिक प्रणाली की विधिसम्मतता को रेखांकित करते हैं ।

भारत में हस्तक्षेप

660. भारत में न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत का उपयोग बाम्बे में साम्राज्यवादी शासन के साथ आरंभ हुआ । चूंकि बाम्बे ने वाणिज्यिक केंद्र के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी, इसलिए भारत और साथ ही इंग्लिश नौवाहन न्यायालयों में प्रचलित सामान्य विधि में व्याप्त कमियों को दूर किए जाने के प्रयोजनार्थ वाणिज्यिक विधि की प्रणाली की आवश्यकता उत्पन्न हुई । इसलिए वर्ष 1669 में नियुक्त किए गए कंपनी न्यायाधीशों से अपेक्षा की गई कि वे सद्विवेक के

---

* डा. जे. डंकन एम. डैरेट, जस्टिस इक्विटी एंड गुड कांशेंस इन चैंजिंग ला इन डेवलपिंग कंट्रीज़, (जे. एन. डी. एंडरसन संस्करण) पृष्ठ 123.

अनुसार न्यायनिर्णयन करें ।* अंततः, तारीख 9 अगस्त, 1683 के रॉयल चार्टर्स द्वारा (i) बाम्बे में वाणिज्यिक और नौवाहन न्यायालय और (ii) तारीख 30 दिसंबर, 1687 के रॉयल चार्टर द्वारा मद्रास में नगरपालिका और मेयर के न्यायालय स्थापित किए गए । बाम्बे की अधिकारिता रखने वाले न्यायालयों से 'समता और सद्विवेक के नियमों और व्यापारियों पर लागू होने वाले कानूनों और रूढ़ियों के अनुसार न्यायनिर्णयन किए जाने की अपेक्षा की गई' । मद्रास स्थित मेयर के न्यायालय का मार्गदर्शन समता और सद्विवेक के अनुसार किया जाना था ।

661. गवर्नर जर्नल वारेन हेस्टिंस ने तारीख 5 जुलाई, 1781 को बंगाल, बिहार और उड़ीसा प्रांतों की दीवानी अदालत के न्यायालयों में न्याय प्रशासन के लिए विनियम पारित किए । उक्त विनियम के विनियम 60 में यह अभिकथित किया गया है :-

> "मोफस्सिल दीवानी अदालतों की अधिकारिता के भीतर आने वाले समस्त मामलों, जिनके लिए एतदद्वारा कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं दिए जा रहे हैं और इन न्यायालयों के माननीय न्यायाधीश न्याय समता और सद्विवेक के अनुसार कार्य करेंगे ।"

सदर न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए इसी प्रकार का एक उपबंध विनियम 93 के अधीन विरचित किया गया । यद्यपि ये उपबंध प्रक्रियात्मक प्रकृति के थे, फिर भी इन नियमों ने भारतीय प्रशासनिक और विधिक अवसंरचना में संकल्पना संबंधी दखलअंदाजी की । वर्ष 1832 के विनियम VII का विनियम 9 निम्नलिखित है :-

> "ऐसे मामलों, जिनमें पक्ष भिन्न-भिन्न विश्वासों को मानने वाले हैं, उनमें धर्मों से संबंधित विधियां किसी भी पक्ष को उस संपत्ति से वंचित नहीं करेंगी, जिसके लिए वह पक्ष उक्त विधियों के क्रियान्वयन के अंतर्गत हकदार हो । ऐसे सभी मामलों में विनिश्चय न्याय समता और सद्विवेक के सिद्धांतों द्वारा शासित होंगे ।

---

* बी. लिंडसे द्वारा लिखित ब्रिटिश जस्टिस इन इंडिया, जो युनिवर्सिटी आफ टोरेंटो ला जर्नल, खंड-I संख्या 2 (1936) के पृष्ठ संख्या 344 पर प्रकाशित किया गया ।

तथापि, इस बात को स्पष्टत: समझा जाना चाहिए कि इन उपबंधों को इंग्लिश या किसी विदेशी विधि या ऐसे मामलों में इन सिद्धांतों द्वारा मंजूरी प्राप्त किसी नियम को प्रस्तावित किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायसंगत नहीं ठहराया जाएगा ।"

इसी के साथ पक्षों पर लागू होने वाली व्यक्तिगत विधियों के उपयोजन के लिए भी गुंजाइश की गई थी । उदाहरण के लिए वर्ष 1781 में ही संसद् ने 1781 का अधिनियम पारित किया जिसकी धारा 17 में यह अनुध्यात किया गया कि उच्चतम न्यायालय को कलकत्ता के निवासियों के विरुद्ध समस्त वादों पर विचार करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए :–

"परंतु यह तब जबकि भूमि की विरासत और उत्तराधिकार, किराए और माल और संविदा के समस्त मामलों और ऐसे मामलों, जिनमें दो पक्षों के मध्य संव्यवहार किए गए हों, विनिर्धारित किए जाएंगे और मुसलमानों के मामलों में उन पर लागू होने वाली विधियों और रूढ़ियों को ध्यान में रखते हुए विनिर्धारित किए जाएंगे और जहां तक राष्ट्र का मामला है, राष्ट्र की विधियों और रूढ़ियों द्वारा विनिर्धारित किए जाएंगे और ऐसे मामलों जिनमें दोनों पक्षों में से एक पक्ष मुस्लिम है या राष्ट्र है, प्रतिवादी पर लागू होने वाली विधियों और रूढ़ियों द्वारा विनिर्धारित किए जाएंगे ।*"

वारेन हेस्टिंग द्वारा न्याय प्रशासन के लिए प्रारूपित योजना को दो मुख्य लक्षणों द्वारा चिह्नित किया गया – जिनमें से एक था अधीनस्थ न्यायालयों, सिविल और दांडिक दोनों को स्थापित किए जाने के द्वारा विकेंद्रीयकरण किया जाना था । अन्य लक्षण हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों को उनके घरेलू संबंधों के अधिक्षेत्र में उनकी अपनी व्यक्तिगत विधियों और रूढ़ियों का पालन किए जाने के बाबत छूट प्रदान करना था ।

---

* वर्ष 1772 की योजना के अनुच्छेद 27 को भी देखें, जिसमें यह उपबंधित है – 'विरासत, विवाह और जाति और अन्य धार्मिक रूढ़ियों और संस्थाओं से संबंधित समस्त वादों में मुसलमानों से संबंधित मामलों में कुरान और राष्ट्र से संबंधित मामलों में शास्त्र का कड़ाईपूर्वक पालन किया जाएगा । ऐसे समस्त मामलों में विधि की व्याख्या के लिए मौलवी उपस्थित होंगे और रिपोर्ट को हस्ताक्षरित करेंगे और डिक्री पारित किए जाने में सहायता प्रदान करेंगे ।' वर्ष 1793 की कॉनवालिस संहिता के विनियम IV की धारा 15 को भी देखें ।

662. हिंदुओं ने वर्ष 1850 तक हिंदू व्यक्तिगत विधि और मुस्लिम व्यक्तिगत विधि का अवलंब आस्था और विश्वास के मामले निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया । ऐसे मामलों, जिनमें विधि के सटीक उपबंध निश्चित नहीं थे, न्यायाधीश इस बाबत दोहरे आश्वासन की अपेक्षा करते थे कि प्रत्येक मामले में उनके विनिश्चय न्याय की आवश्यकता के सामंजस्य में हों । उन्होंने इस प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए 'न्याय, समता और सद्विवेक' का आश्रय लिया ।

संकल्पना और इंग्लिश विधि का विलय

663. भारतीय विधिक प्रणाली में 'न्याय, समता और सद्विवेक' को प्रस्तावित किए जाने के साथ-साथ क्रमिक रूप से एक अन्य समानांतर विकास हुआ – इस शब्द की व्यापक रूप से मजबूती, जिसने समय के साथ-साथ विधि की विभिन्न प्रणालियों को समानता के साथ निर्दिष्ट किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की, के बावजूद यह उपधारणा भी उद्भूत हुई कि 'न्याय, समता और सद्विवेक' शब्द इंग्लिश विधि के पर्याय हैं । ईस्ट इंडिया कंपनी में शक्तियों के विस्तार के साथ ही न्याय प्रशासन की शक्ति भी निहित हो गई । श्री एम. सी. सीतलवाड ने लिखा है :–

> "चूंकि कंपनी के राज्यक्षेत्र निपटारों और विजय के साथ धीरे-धीरे विस्तारित होते गए, इसलिए प्रिवी कौंसिल भारतीय न्यायालयों द्वारा पारित विनिश्चयों से उद्भूत होने वाली अपीलों पर विचार के प्रयोजनार्थ उच्चतम न्यायालय के रूप में इंग्लिश न्यायशास्त्र के आधारी सिद्धांतों के उपयोजन में संपूर्ण देश में विनिश्चयों के नियम के रूप में बढ़ता हुआ प्रभाव बन गई । यह नैसर्गिक था और शायद अपरिहार्य भी कि प्रख्यात इंग्लिश न्यायाधीश, जो अधिकरणों की अध्यक्षता कर रहे थे, को ऐसे समस्त मामलों, जो उनके समक्ष उपस्थित हुए, जिनमें भारतीय विनियमों या कानूनों में समाविष्ट उपबंधों के आधार पर समस्याओं के हल के लिए लागू होने योग्य उपबंध समाविष्ट नहीं थे, का हल निकालने के प्रयास उस अध्ययन, जिसके आधार पर उनकी शिक्षा हुई थी और उन नियमों और सिद्धांतों, जिनके वे अपने जीवन की लंबी अवधि के दौरान अभ्यस्त थे, पर आधारित होकर करने चाहिए थे । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में प्राचीनकाल से इस अधिकरण

(प्रिवी कौंसिल) के समक्ष फाइल होने वाली अपीलों में पारित विनिश्चय भारतीय न्यायशास्त्र के निकाय में सामान्य विधि और साम्या के सिद्धांतों को स्थिर और निरंतर रूप से लागू किए जाने में परिणित हुए ।*"

664. ईस्ट इंडिया कंपनी के क्रियाकलापों में वृद्धि के साथ भारतीय न्यायिक प्रणाली इंग्लिश विधि में प्रशिक्षित न्यायाधीशों और बैरिस्टरों के रंग में रंग गई । इसके कारणवश ब्रिटिश इंडिया के न्यायालयों के समक्ष दलीलों और साथ ही न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों, दोनों में इंग्लिश विधि के निदेश बढ़ गए । प्रख्यात अमेरिकन विद्वान् मार्क गैलेंटर ने इंग्लिश विधि के साथ इन (न्याय, समता और सद्विवेक) शब्दों का विलय किया है :–

"अंग्रेजों ने विधि के प्राधिकृत निकायों की खोज में प्राचीन पाठों और नवीनतम टीका-टिप्पणियों के संग्रह और अनुवाद किए । तथापि, भारतीय विधि आश्चर्यजनक रूप से भ्रामक साबित हुई ... इस बात को शीघ्र ही मान्यता प्रदान कर दी गई कि शास्त्र केवल विधि के अंग हैं और अनेक मामलों में भारतीय प्रथागत विधियों के कमतर औपचारिक निकायों द्वारा विनियमित हैं । किंतु प्रथागत विधियां भी पर्याप्त नहीं थीं ... अंततः, इस प्रकार से महसूस किए गए अंतरालों को भरे जाने की आवश्यकता इंग्लिश विधि के आधार पर कानूनी रूप से संहिताकरण की ओर ले गई । <u>किंतु इसी दौरान न्यायालय, जो 'न्याय, समता और सद्विवेक' के अनुसार मामलों को निर्णीत किए जाने के लिए सशक्त थे, ने शास्त्र और प्रथाओं के अंतरालों को 'विदेशी विधि के अनेकीकृत अंतराल' द्वारा भर दिया । यद्यपि, अन्य स्त्रोतों से इस अति उपयुक्त नियम को प्राप्त करने का प्रयास किया गया, फिर भी अधिकांश मामलों में 'इंग्लिश' न्यायाधीश यह उपधारणा करने के लिए आनत थे कि इंग्लिश विधि ही सर्वाधिक उपयुक्त विधि है</u> ।*"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

---

* एम. सी. सीतलवाड द्वारा लिखित 'द कॉमन ला इन इंडिया' (1960) पृष्ठ 31-32.

* मार्क गैलेंटर द्वारा लिखित 'ला एंड सोसाइटी इन मोर्डन इंडिया' (1997) पृष्ठ 221, 222.

665. लागू विधि को व्यक्तिगत विधि के रूप में अभिकथित किया गया और साम्राज्यवादी सरकार ने आरंभिकत: पंडितों और मौलवियों के परिसाक्ष्य का अवलंब धार्मिक पाठों, जिनका प्रयोग न्याय-निर्णयन के लिए किया जाना था, के अनुवाद के प्रयोजनार्थ लिया । अंतत:, इस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया और सुसंगत धार्मिक पाठों के अंग्रेजी अनुवाद का अवलंब अधिक मात्रा में लिया जाने लगा । अंतत:, साम्राज्यवादी सरकार ने इंग्लिश विधि में किसी अधिशेष कमी को पूर्ण करने की ईप्सा की ।[**] एक अन्य विवाद वर्ष 1833 में प्रिवी कौंसिल को भारत में निर्णीत होने वाले मामलों से उद्भूत होने वाली अपीलों के अंतिम न्यायालय के रूप में स्थापित किए जाने के संबंध में था । फिर भी सत्यता में 'न्यास, समता और सद्विवेक' शब्द विधि की सदृश्य प्रणाली को व्यापक तौर पर निर्दिष्ट किए जाने के लिए प्राधिकृत करते हैं ताकि विधिक सिद्धांतों, जिनको न्यायालय के समक्ष विनिर्दिष्ट मामलों में लागू किया जा सकता है और न्यायसंगत परिणाम प्राप्त किया जा सकता है, के स्त्रोतों का पता लगाया जा सके ।

666. मुख्य न्यायमूर्ति बर्नेस पीकॉक ने शुद्ध विधिक स्थिति का उल्लेख **डेगनबारी डाबी** बनाम **ईशान चंदर सेन**[2] वाले मामले में किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया :–

> "अब हम समता, न्याय और सद्विवेक के सिद्धांत को लागू करते हुए उन सिद्धांतों, जिनसे हमें मार्गदर्शन प्राप्त होना है, की खोज में कहां पर खड़े हैं ? हमें अन्य देशों, जहां न्याय और समता के सिद्धांत को उन सिद्धांतों पर लागू किया जाता है, जो समय के साथ-साथ विकसित हुए हैं, यह देखना होगा कि न्यायालय समान परिस्थितियों में किस प्रकार से कार्य करते हैं और अपनाए जाने वाले सिद्धांतों पर भी विचार करना होगा; और यदि हम इस

[**] सर जॉर्ज रैंकिन द्वारा लिखित 'द पर्सन ला इन ब्रिटिश इंडिया' – तारीख 21 फरवरी, 1941 को सर जॉर्ज बर्डउड मेमोरियल लेक्चर – 1772 की योजना के अंतर्गत सिविल न्यायालयों में इंग्लिश न्यायाधीशों द्वारा पंडितों और मौलवियों से विधि अभिप्राप्त किया जाना था; ये 'विधि अधिकारी वर्ष 1772 से 1864 तक एक संस्था के रूप में कार्यरत रहे, यद्यपि वे ....'

[1] (1868) 9 डब्ल्यू. आर. 230, 232.

निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे नियम, जिनको अधिकथित किया गया है, समता के सत्य आधारित सिद्धांतों के अनुसार हैं, तो हम उनका अनुसरण करके कोई दोषपूर्ण निर्णय पारित नहीं कर सकते ।"

भारत में इस संकल्प के विकास की सत्य आधारित समझ को न्यायिक विनिश्चयों में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है । **गाथाराम मिस्त्री** बनाम **मूहिता कोचीन अत्तीह डोमुनी**[1] वाले मामले में वादी ने दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए वाद फाइल किया था । इस मामले में उप आयुक्त ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि समारोह आयोजित किया गया था, किंतु इस समारोह से औपचारिक रूप से विवाह गठित नहीं होता । इसमें कोई अन्य कारण दर्शित नहीं किए गए और इसलिए मामले को प्रतिप्रेक्षित (रिमांड) कर दिया गया । न्यायमूर्ति डब्ल्यू. मार्कबी ने इस निर्देश के अतिरिक्त दाम्पत्य संबंधों की पुनर्स्थापना की डिक्री की प्रवर्तनीयता के संबंध में एक अन्य मताभिव्यक्ति भी की :-

> "किंतु निश्चित रूप से जब हम मार्गदर्शन के प्रयोजनार्थ इंग्लैंड की विधि पर विचार करते हैं, तो यहां पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विद्यमान विधि समता के समान सिद्धांतों के सामंजस्य में है और यही वह न्यायशास्त्र है, जिसको हमें अंगीकृत करना चाहिए और न कि ऐसे न्यायशास्त्र को जो अपवादिक हों । जहां तक दाम्पत्य अधिकारों को प्रवर्तित किए जाने के विषय पर इंग्लिश विधि का संबंध है, मुझे किसी भी प्रकार की कोई शंका नहीं है ... इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमको यह अभिनिर्धारित करना हो कि न्यायालय असीमित जुर्माने और कारावास द्वारा दाम्पत्य कर्तव्यों के निरंतर रूप से निर्वहन को प्रवर्तित कर सकते थे, तो हमको इस देश की विधि को संपूर्ण सभ्य समाज की विधि के विपरीत रखना होगा, सिवाय इंग्लैंड के गिरिजाघर वाले कानूनों के ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यद्यपि ऐसे मामलों, जिनमें न्यायालय ने मार्गदर्शन के प्रयोजनार्थ इंग्लिश विधि का अवलंब लिया,

---

[1] (1875) 23 डब्ल्यू. आर. 179.

तो उसको प्रथमतः इस बात की पुष्टि करनी थी कि क्या इंग्लिश विधि ने सामान्य समता और न्याय के सिद्धांतों की पुष्टि की । न्यायालय ने इस बात को मान्यता प्रदान की कि यद्यपि दाम्पत्य अधिकारों की मांग या असीमित जुर्माने या कारावास की पीड़ा इंग्लैंड में लागू स्थिति की पुष्टि करते हैं, किंतु ऐसे मामलों, जिनमें सभ्य विधिक व्यवस्था के शासी सिद्धांत यह उपदर्शित करते हैं कि वे न्याय, समता और सद्विवेक के विरुद्ध हैं, न्यायालय उसको अंगीकृत करने के लिए बाध्य नहीं है ।

667. **राधा किशन** बनाम **राज कौर**[1] वाले मामले में एक व्यक्ति, जिसने अपनी जाति के बाहर की स्त्री से बच्चे उत्पन्न किए थे, को जाति बाहर मान लिया गया था । महिला ने उसकी मृत्यु पर उसकी संपत्ति अपने कब्जे में ले ली, किंतु उसने अपनी मृत्यु पर संपत्ति का कब्जा अपने बच्चों को दे दिया । उस व्यक्ति के भाइयों ने उसकी संपत्ति की प्राप्ति के लिए यह अभिवचन करते हुए वाद फाइल किया कि महिला और उसके अवैध बच्चों का संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं है । न्यायालय ने इंग्लिश विधि को निर्दिष्ट किए बिना अभिनिर्धारित किया कि संपत्ति स्वअर्जित थी और इसलिए न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत की यह अपेक्षा है कि वाद को खारिज कर दिया । इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति एडगर और न्यायमूर्ति नॉक्स ने एक साथ निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "हम हमारे समक्ष उद्धृत की गईं निर्णयज विधियों और पाठ्यों के आधार पर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते कि इस मामले में हमारा मार्गदर्शन कोई निश्चित सिद्धांत करेगा । हमको इन परिस्थितियों के अंतर्गत न्याय और सद्विवेक के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करना चाहिए और विक्रेता के भाइयों के लाभार्थ खुम्मन द्वारा अर्जित संपत्ति के कब्जे से उसके पुत्रों, उनकी माता और मृतक पुत्र की विधवा को बेदखल करने से इनकार कर देना चाहिए... ।"

इस मामले में इंग्लिश विधि को सुस्पष्ट रूप से निर्दिष्ट नहीं किया

---

[1] (1891) 13 इलाहाबाद 573.

गया बल्कि उन सामान्य सिद्धांतों को निर्दिष्ट किया गया, जो 'न्याय, समता और सद्विवेक' की संकल्पना को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं ।

668. प्रिवी कौंसिल ने **राजा किशन दत्त राम** बनाम **राजा मुमताज अली खान**[1] वाले मामले में एक बंधककर्ता, जिसकी संपत्ति की कीमत कब्जेदार बंधकगृहीता द्वारा कतिपय विलयनों के कारण बढ़ोतरी हो गई थी, के उन्मोचन के अधिकारों पर विचार किया । न्यायमूर्ति जे. डब्ल्यू. कोलविले ने मताभिव्यक्ति की :–

> "27... यदि उन सिद्धांतों, जिनका अवलंब लिया गया, इंग्लिश विधि के तकनीकी नियमों पर आधारित थे, तो वे समता और सद्विवेक के व्यापक सिद्धांतों के आधार पर निश्चित रूप से किसी ऐसे मामले, जैसाकि वर्तमान मामला है, के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ लागू नहीं होंगे । यह सिद्धांत केवल तब लागू होंगे, जब वे सामान्य समता और सद्विवेक से सम्मत हों और पुनः यदि वे सिद्धांत उस लक्षण को धारण करते हों, तो उनके उपयोजन की सीमाओं पर इंग्लिश विनिश्चयों के अनुक्रम द्वारा कठोरतापूर्वक परिभाषित शब्दों के आधार पर विचार नहीं किया जा सकता, यद्यपि वे विनिश्चय निःसंदेह रूप से मूल्यवान हैं, जहां तक वे सामान्य समता के सिद्धांत को मान्यता प्रदान करने वाले हैं और यह दर्शित करते हैं कि इस सिद्धांत को इस देश के न्यायालयों द्वारा किस प्रकार से लागू किया गया है ।"

669. इस स्थिति का समर्थन नहीं किया जा सकता कि 'न्याय, समता और सद्विवेक' शब्द इंग्लिश विधि को उपदर्शित करते हैं, यह सूत्र 'इंग्लिश विधि से प्रस्थान की युक्ति था, न कि उसके उपयोग की' ।[*] यह सत्य है कि भारत में इस सूत्र के उपयोजन से भारतीय विधि प्रणाली में वैश्वीकरण, सांस्कृतिक-संक्रमण, ज्ञानमीमांसीय समुदाय को दृष्टि में रखते हुए इंग्लिश विधि के प्रसार की घोषणा हुई । इस सूत्र ने राष्ट्रीय सीमाओं के परे विधि की प्रणालियों की समानता द्वारा निदेश प्राधिकृत

---

[1] (1878-79) 6 आई. ए. 145.

[*] डा. जे. डंकन एम. डैरेट द्वारा लिखित 'जस्टिस इक्विटी एंड गुड कांशेंस इन चेंजिंग ला इन डेवलपिंग कंट्रीज़' (जे. एन. डी. एंडरसन संस्करण) ।

किए । यद्यपि, इस शब्द की रोमन उत्पत्ति के कारण यह शब्द उन स्थितियों में व्यापक उपयोजन के लिए तात्पर्यित है, जहां ऐसा कोई अभिव्यक्त उपबंध विद्यमान हो, जो मामले को शासित करने वाला हो, चूंकि यह शब्द भारत में विकसित हुआ इस शब्द का विकास यह उपदर्शित करता है कि इसका उपयोजन केवल उन मामलों में होगा, जिनमें निश्चायक विधि और प्रथागत विधि मौन हैं या अनुचित या बेतुके परिणामों की ओर ले जाने वाली है जिससे न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों को लागू किया जा सके ।

वर्तमान परिदृश्य में न्याय, समता और सद्विवेक

670. हिंदू संहिता और 1937 के शरीयत अधिनियम में प्रथाओं के विकासशील संहिताकरण को सम्मिलित करते हुए कानून और न्यायिक विनिश्चयों के विकास के साथ न्याय, समता और सद्विवेक पर अवलंब की आवश्यकता क्रमशः घटती गई । वर्तमान में न्याय, समता और सद्विवेक के उपयोजन का दायरा घट गया है (कम से कम सैद्धांतिक रूप से) जबकि किसी कानून के अंतर्गत स्थापित सैद्धांतिक स्थिति तथ्यात्मक स्थितियों या ऐसी स्थितियों को आच्छादित करने वाली होती है, जिनमें प्रश्नगत व्यक्तिगत विधि प्रणाली को रेखांकित करने वाले सिद्धांतों को निश्चित रूप से अभिनिश्चित किया जा सकता हो । किंतु फिर भी किसी ऐसे सिद्धांत को अपनाया जाना न्यायिक शिल्प को नुकसान पहुंचाने वाला होगा, जो न्याय, समता और सद्विवेक के उपयोजन को कानून द्वारा शासित विधि के क्षेत्र में अपवर्जित करता हो । विधि क्रमिक रूप से तब विकसित होती है, जब न्यायाधीश उन पर निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ कानून के सामंजस्य में कार्य करते हैं । ऐसे मामलों जिनमें पक्षों के अधिकार किसी विशिष्ट व्यक्तिगत विधि द्वारा शासित नहीं होते या ऐसे मामलों जिनमें व्यक्तिगत विधि मौन होती है या किसी न्यायालय द्वारा अभिनिश्चित किए जाने के योग्य नहीं होती, ऐसे मामलों जिनमें संहिता में कोई कमी होती है या ऐसे मामलों जिनमें विधि का स्रोत विफल हो जाता है या उसको पूर्णता प्रदान किया जाना अपेक्षित हो जाता है तो न्याय, समता और सद्विवेक को युक्तियुक्त रूप से निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

671. स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय न्यायालयों ने इस संकल्पना (न्याय, समता और सद्विवेक) का बारंबार प्रयोग किया, किंतु 'न्याय, समता और सद्विवेक' शब्दों को व्यापक दृष्टिकोण में अंगीकृत किया गया । इस बाबत इस न्यायालय द्वारा दो मामलों में पारित निर्णय निदेशात्मक हैं । **नामदेव लोकमन लोधी** बनाम **नर्मदाबाई**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111(छ) में वर्ष 1929 में किए गए संशोधन, जिनके द्वारा पट्टादाता द्वारा पट्टे के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ लिखित सूचना दिए जाने की अपेक्षा की गई, न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत का अनुपालन किया गया । न्यायमूर्ति मेहरचंद महाजन, जो तत्समय माननीय न्यायाधीश थे, ने इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "7. अत: विचारार्थ जो मुख्य बिंदु उद्भूत होता है, यह है कि क्या वर्ष 1929 में संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111 की उपधारा (छ) में सम्मिलित किए गए विशिष्ट उपबंध कुछ और नहीं बल्कि न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत को मान्यता प्रदान करते हैं या क्या यह विधान मंडल द्वारा इस धारा में सम्मिलित किया गया मात्र एक प्रक्रियात्मक और तकनीकी नियम है और समता के किसी सुस्थापित सिद्धांत पर आधारित नहीं है । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया और जैसाकि हम न्यायत: समझते हैं, धारा 111 की उपधारा (छ) के अधीन सूचना दिए जाने के संबंध में सम्मिलित किया गया यह उपबंध न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत पर आधारित नहीं था ।
>
> 18. ... इंग्लैंड में किसी संपत्ति के स्वामी के लिए किराए के असंदाय के मामले में यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी उन्मोचन के परिणाम के पूर्व सूचना दे । अत: यह नहीं कहा जा सकता कि धारा 111 की उपधारा (छ) में जो अधिनियमिति की गई है, ऐसा मामला है, जो इंग्लैंड में आज भी न्याय, समता और सद्विवेक के मामले के रूप में विचारित किया जाता है ।"

---

[1] [1953] एस. सी. आर. 1009.

इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि देयों के असंदाय के बाबत पट्टादाता द्वारा जारी की जाने वाली सूचना की अपेक्षा प्रक्रिया नहीं है और किसी कानूनी आज्ञा की अनुपस्थिति में ऐसी प्रक्रिया को 'न्याय, समता और सद्विवेक' के बहाने सम्मिलित नहीं किया जा सकता । एक दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायपीठ ने न्याय, समता और सद्विवेक को इंग्लिश विधि में उल्लिखित स्थिति के साथ मिश्रित कर दिया । यह सही स्थिति नहीं है । इस न्यायालय द्वारा इस मामले में व्यक्त किए गए विचारों का पुनर्निर्वचन **मुरारी लाल** बनाम **देवकरण**[1], जो अपीलार्थी के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा उन्मोचन के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए वाद में उद्भूत हुआ था, वाले मामले में किया गया । प्रत्यर्थी ने दलील दी कि यद्यपि उसके द्वारा कतिपय संपत्तियों के बंधक द्वारा प्राप्त किए गए ऋण के संदाय की अवधि व्यतीत हो चुकी थी, फिर भी उन्मोचन का अधिकार उसमें निहित रहा । अपीलार्थी द्वारा इसका विरोध यह दलील देते हुए किया गया कि वह अनुध्यात पुनर्संदाय की अवधि के व्यतीत हो जाने पर बंधक संपत्ति का एकमात्र स्वामी बन गया था । यद्यपि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 60 में उन्मोचन पर समता आधारित सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है, फिर भी वे सिद्धांत अलवर वाले मामले, जिसमें विवाद उद्भूत हुआ, पर लागू नहीं होते । इस न्यायालय की संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि बंधक अभिलेख में एक उपबंध समाविष्ट है, जिसके परिणामस्वरूप उन्मोचन की साम्या पर रुकावट उत्पन्न हो गई है । मुख्य न्यायमूर्ति पी. बी. गजेन्द्र गड़कर ने न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "5. इसलिए वर्तमान अपील में जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है, यह है – क्या वर्तमान मामले में बंधककर्ताओं के उन्मोचन के समता आधारित अधिकार को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ समता आधारित सिद्धांत, बंधक विलेख में ऐसे अनुध्यापन द्वारा समता आधारित किसी अधिकार पर सृजित रुकावट के बावजूद, लागू होते हैं ? यह प्रश्न इसी स्वरूप में उद्भूत होता है क्योंकि संपत्ति अंतरण अधिनियम तत्समय अलवर में लागू नहीं होता था,

---

[1] [1964] 8 एस. सी. आर. 239.

जब बंधक विलेख निष्पादित किया गया था और न ही उस समय लागू होता था जब 15 वर्षों की अनुध्यात अवधि व्यतीत हुई ।

....

15. इस दलील पर विचार करते हुए यह सह सुसंगत होगा कि इस बात पर विचार किया जाए कि भारत में न्यायालय परंपरागत रूप से समता के सिद्धांतों, जो बंधक विलेखों के अनुध्यापनों को प्रवर्तित किए जाने पर रोक लगाते हैं, को निरंतर रूप से प्रवर्तित करते रहे हैं और जो असुसंगत रूप से बंधककर्ता के उन्मोचन किए जाने के अधिकारों को निषिद्ध या प्रतिबंधित करते हैं... वास्तव में नामदेव लोकमन लोधी **बनाम** नर्मदाबाई, [1953] एस. सी. आर. 1009 वाले मामले में इस न्यायालय ने सुस्पष्ट रूप से मत व्यक्त किया कि यह स्वयं सिद्ध होगा कि न्यायालय न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत को उन संव्यवहारों पर लागू करें जो उनके समक्ष विनिर्धारण के लिए उपस्थित हों यद्यपि संपत्ति अंतरण अधिनियम के कानूनी उपबंध उन संव्यवहारों पर लागू न होते हों । सारत: ये मताभिव्यक्तियां जरूरतमंद बंधककर्ताओं पर बंधकगृहीताओं द्वारा, जब बंधक विलेख निष्पादित किए जाते हैं, दमनकारी, अन्यायपूर्ण और अयुक्तियुक्त ढंग से अधिरोपित किए गए निर्बंधनों पर विचार करते हुए उसी परंपरागत न्यायिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

....

16. ... फिर भी हम यह समझते हैं कि यह उपधारणा करना युक्तिसंगत होगा कि अलवर राज्य में स्थापित सिविल न्यायालय संपूर्ण देश में स्थापित सिविल न्यायालयों के समान हैं, जिनसे ऐसे मामलों, जिनमें उनके समक्ष उठाए गए प्रश्नों पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध उपलब्ध नहीं है, तो न्याय और समता का प्रशासन किए जाने की अपेक्षा की जाती है । ... इस बिंदु पर हम अभिलेख पर किसी सामग्री की अनुपस्थिति में सरयू प्रसाद की इन दलीलों को स्वीकार कर पाने में अनिच्छुक हैं कि न्याय और समता के सिद्धांत को वर्तमान विवाद पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ असुसंगत प्रतीत किया जाना चाहिए ।

....

20. अत: यह स्पष्ट है कि सिविल न्यायालयों द्वारा न्याय, समता और सद्विवेक के साम्यापूर्ण सिद्धांत को राजस्थान के सारभूत भाग में बंधकों पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ निरंतर रूप से लागू किया गया और इससे प्रत्यर्थी की इस दलील को बल मिलता है कि इस बात को अलवर में भी मान्यता प्रदान की गई कि यदि किसी बंधक विलेख में कोई ऐसा अनुध्यापन समाविष्ट है, जो उन्मोचन न्यायालयों द्वारा बंधककर्ता के समता आधारित अधिकारों को अयुक्तियुक्त रूप से निर्बंधित करता हो, को उस अनुध्यापन का अनदेखा किए जाने और बंधककर्ता के उन्मोचन के अधिकार को प्रवर्तित किए जाने के लिए सशक्त किया गया, निश्चित रूप से इस बाबत परिसीमा की सामान्य विधि के अध्यधीन रहते हुए । अत: हम इस बाबत संतुष्ट हैं कि राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि सुसंगत अनुध्यापन, जिसका अपीलार्थी ने अवलंब लिया, को प्रवर्तित किया जाना चाहिए, यद्यपि यह अनुध्यापन उन्मोचन की सक्षमता पर रुकावट सृजित करता है, के आधार पर अपीलार्थी के पक्ष में हमारे द्वारा मध्यक्षेप को न्यायसंगत ठहराए जाने का कोई मामला नहीं बनता ।”

672. न्यायालय ने उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए विनिश्चयों, जिनके द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 60 में न्यायसंगत और साम्यापूर्ण सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया था, को उद्धृत किया । न्यायपीठ ने इस दृष्टि से न्याय, समता और सद्विवेक द्वारा सम्मिलित किए गए सिद्धांतों का व्यापक दृष्टिकोण अंगीकृत किया । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि **नामदेव** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार असुसंगत और दमनकारी संविदात्मक निबंधनों के अनुरूप स्थिति के समरूप हैं और इस बात को ध्यान में रखते हुए न्याय, समता और सद्विवेक इंग्लिश विधि के केवल उस स्थिति में अनुरूप हैं, जिसमें इंग्लिश विधि स्वयमेव न्याय, समता और सद्विवेक द्वारा समर्थित सिद्धांतों के पुष्टिकरण में हो ।

673. यहां पर समस्त तथ्यों को एक धागे में बांधने वाला सिद्धांत यह है कि न्याय, समता और सद्विवेक न्यायालयों को अनुपूरक भूमिका का निर्वाह करने के लिए सक्षम बनाते हैं ताकि वे परिस्थितियों, जो उनके समक्ष उपस्थित होती हैं, की उपयुक्तता के अनुसार न्यायसंगत परिणाम सुनिश्चित किए जाने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अनुतोष प्रदान कर सके । ऐसी परिस्थितियों, जिनमें न्यायालयों के लिए उनके समक्ष उपस्थित विवाद के न्यायनिर्णयन हेतु विद्यमान कानूनी अवसंरचना अपर्याप्त हो या कोई भी स्थिरीकृत न्यायिक सिद्धांत या प्रथा उपलब्ध न हो, तो न्यायालय मामले के प्रभावपूर्ण और निष्पक्षतापूर्ण निस्तारण के लिए न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों का आश्रय ले सकते हैं । न्यायालय विधिक अधिकारों के बाबत किसी विवाद को निर्णीत करने के अपने दायित्व को मात्र इस कारणवश कि किसी मामले के तथ्य विद्यमान विधि मैं उल्लिखित निबंधनों के अनुरूप नहीं है, त्याग नहीं सकता । भारत में न्यायालयों ने विधिक विवादों की इस आधारी सत्यता को ध्यान में रखते हुए विधि में निबंधनों की अपूर्णता या अनुपयोगिता को पूर्ण किए जाने के प्रयोजनार्थ लंबी अवधि से न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों को लागू किया है, ताकि पक्षों के मध्य न्याय किया जा सके । समता न्याय के आवश्यक संघटक होने के नाते विवादों के न्यायसंगत न्यायनिर्णयन में अंतिम कार्रवाई सृजित करती है । विद्वानों ने अनेक विधिक प्रणालियों से विधिक सिद्धांतों का आश्रय लेने के पश्चात् इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखीं और यदि बार और बैंच के अनुभव के आधार पर विनिश्चय नहीं हो पाता या किसी न्यायसंगत निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता, तो न्यायाधीश पक्षों के मध्य यह सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि न्याय सुलभ हो, समता के सिद्धांतों को लागू कर सकता है । ये सिद्धांत बहुधा अनुतोषों, जो विधिक रूप से मान्य ठहराए जाने योग्य हों और न्यायसंगत भी, को सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय की शक्ति का अंग रहा है ।

साम्या और अनुच्छेद 142

674. सिद्धांत के रूप में न्याय, समता और सद्विवेक की संकल्पना का उद्देश्य निष्पक्ष परिणाम को सुनिश्चित करना और इस

सिद्धांत को भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 में भी अभिव्यक्ति प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है :–

> "142. (1) उच्चतम न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसी डिक्री पारित कर सकेगा या ऐसा आदेश कर सकेगा, जो उसके समक्ष लंबित किसी वाद या विषय में <u>पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो</u> और इस प्रकार पारित डिक्री या किया गया आदेश भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र ऐसी रीति से, जो संसद् द्वारा बनाई गई हो, किसी विधि द्वारा या उसके अधीन विहित की जाए और जब तक इस निमित इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है, तब तक ऐसी रीति से जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विहित करे प्रवर्तनीय होगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

'पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो' व्यापक आयाम का वाक्यांश है और अपने भीतर समता की शक्ति को समाहित करता है, जिसको तब योजित किया जाता है, जब कोई न्यायसंगत निष्कर्ष प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ विधि का कड़ाईपूर्वक पालन अपर्याप्त हो गया हो । न्याय की मांग के लिए न केवल निश्चायक विधि को ध्यान में रखते हुए बल्कि निश्चायक विधि की मौनता को भी ध्यान में रखते हुए अत्यंत करीब से ध्यान में रखा जाना अपेक्षित होता है ताकि इसके अंतरालों के मध्य किसी हल को खोजा जा सके, जो साम्यापूर्ण और निष्पक्ष, दोनों हो । न्यायालयों के समक्ष विधि उद्यम किसी मामले के विनिर्दिष्ट तथ्यों के बाबत सामान्य शब्दांकित विधियों के उपयोजन पर आधारित होता है । मानवीय इतिहास की जटिलताएं और क्रियाकलाप अनिवार्यत: विलक्षण मुकदमेबाजी की ओर ले जाने वाली होती है – जैसेकि इस मामले में, जिसमें धर्म, इतिहास और विधि अंतर्वलित हैं – जिसमें विधि अपनी सामान्य प्रकृति द्वारा मामले में निपटारे के प्रयोजनार्थ अपर्याप्त हैं । ऐसे मामलों, जिनमें निश्चायक विधि स्पष्ट होती है, अनुच्छेद 142 के अधीन शक्ति का जानबूझकर व्यापक आयाम न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने के लिए शक्ति प्रदान करता है, जो न्याय के साथ समाप्त होता है । चूंकि न्याय ही वह आधार है, जो किसी विधिक उद्यम के प्रयोजन को सार्थक करता है और जिसके

आधार पर विधि के नियम की विधिसम्मत्ता टिकी होती है । संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन न्यायसंगत शक्ति सामान्य और विनिर्दिष्ट विधियों के मध्य चारों तरफ से आने वाले मार्गों को एक स्थान पर ले आती है । न्यायालय स्वयं को ऐसी स्थिति में पाते हैं, जिनमें विधि की मौनता पर उसके धारदार शब्दों के अर्थों या कठोर अर्थों के साथ विचार किए जाने की आवश्यकता होती है और जिसको विधि की दृष्टि में विनम्रता प्रदान किए जाने की भी आवश्यकता होती है ताकि विधि के मानवतावादी और सहानुभूतिपूर्ण चेहरे को बनाए रखा जा सके । इन सभी बातों के अतिरिक्त विधि का विनिर्धारण और निर्वचन किए जाने की आवश्यकता होती है और उसे इस मामले में लागू किया जाना है ताकि भारत अनेक धर्मों और बहुलतावादी मूल्यों के लिए गृह और आश्रय के रूप में अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रख सके । यह भारत की बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक स्वरों के कोलाहल में है जो मिली जुली संस्कृति या क्षेत्रों और धर्मों पर आधारित होता है और साथ ही भारतीय नागरिक ऐसा व्यक्ति है और भारत ऐसा राष्ट्र है, जिसको अपने भीतर शांति का भाव महसूस करना चाहिए । यह एक न्यायसंगत समाज के लिए इस अंततोगत्वा संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि हम न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत को लागू करें । यही वह स्थितियां हैं, जिनमें न्यायालय ऐसा आदेश पारित करने के द्वारा, जो पक्षों के मध्य संपूर्ण न्याय सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो, न्यायसंगत निर्णय सुनिश्चित करने के लिए सशक्त हैं ।

675. **यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए मुख्य न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र ने अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त शक्तियों को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया :–

> "83. ... सामान्य विधियों में समाविष्ट प्रतिषेध या परिसीमाएं या उपबंध स्वयमेव ही अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त संवैधानिक शक्तियों के आधार पर प्रतिषेध या परिसीमा के रूप में कार्य नहीं कर सकते ... किंतु हम यह समझते हैं कि ऐसे प्रतिषेधों को लोक

---

[1] (1991) 4 एस. सी. सी. 584.

नीति के कुछ आधारी और सामान्य विवाद्यकों पर आधारित दर्शित किया जाना चाहिए और किसी विशिष्ट कानूनी योजना या पद्धति के आनुषांगिक नहीं । पुनः यह कहना दोषपूर्ण होगा कि अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त शक्तियां अभिव्यक्त कानूनी प्रतिषेधों के अध्यधीन होती हैं । इससे हमको यह विचार संप्रेषित होता है कि कानूनी उपबंध किसी संवैधानिक उपबंध पर अध्यारोही प्रभाव रखते हैं । निश्चित रूप से इस विचार को अभिव्यक्त करने का उचित तरीका यह है कि सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और साथ ही किसी वादकारण या मामले में 'पूर्ण न्याय' प्रदान किए जाने की आवश्यकता का निर्धारण करने में लोक नीति के कुछ आधारी सिद्धांतों पर आधारित किसी सारभूत कानूनी उपबंध में अभिव्यक्त प्रतिषेधों का आश्रय लेगा और तद्नुसार अपनी शक्तियों और विवेकाधिकार का प्रयोग करेगा । यह प्रतिपादना अनुच्छेद 142 के अधीन न्यायालय की शक्ति से संबंधित नहीं है बल्कि केवल इस बात से संबंधित है कि किसी वादकारण या मामले और शक्ति के प्रयोग के औचित्य के अंतिम विश्लेषण के संबंध में 'पूर्ण न्याय' क्या है और क्या नहीं है । अधिकारिता की कमी या उसकी शून्यता का प्रश्न उद्भूत नहीं होता ।"

ऐसे मामले, जिनको अनमनीयता की स्थिति पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ अपर्याप्त समझा जाता है, तो पूर्ण न्याय प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय की व्यापक शक्ति अंतिम अपील के न्यायालय की है, जो साम्या का अंतर्निहित विशिष्ट लक्षण है कि विधि को इस प्रकार से प्रारूपित किया जाए कि इस बाबत संरक्षण प्रदान किया जा सके और यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्यायालय ऐसा अनुतोष प्रदान करने के लिए सशक्त है, जो कारण और न्याय दोनों के साथ समान रूप से व्यवहार करता हो । इसी प्रकार से **सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति ए. एस. आनंद ने न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

---

[1] (1998) 4 एस. सी. सी. 409.

"47. तथापि, यह स्मरण रखे जाने की आवश्यकता है कि अनुच्छेद 142 द्वारा न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों की प्रकृति क्यूरेटिव (न्याय प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ सुनवाई का अंतिम असाधारण अवसर) होने के कारण ऐसी शक्तियों के रूप में विचारित नहीं किया जा सकता, जो न्यायालय को उसके समक्ष लंबित किसी मामले पर विचार करते समय किसी पक्ष के सारभूत अधिकारों का अनदेखा करने के लिए प्राधिकृत करती हों ... यद्यपि अनुच्छेद 142 में समाविष्ट व्यापक शक्तियां का प्रयोग किसी ऐसे नए पक्षकथन, जो पहले से विद्यमान नहीं था, के निर्माण के प्रयोजनार्थ नहीं किया जा सकता, साथ ही अभिव्यक्त कानूनी उपबंधों का अनदेखा करते हुए किसी ऐसे विषय पर विचार नहीं किया जाना चाहिए और तद्द्वारा परोक्ष रूप से किसी ऐसे अनुतोष को अभिप्राप्त नहीं किया जाना चाहिए, जिसको प्रत्यक्षत: अभिप्राप्त नहीं किया जा सकता ।"

676. न्यायालय के विचार में किसी डिक्री या आदेश को पारित किए जाने के प्रयोजनार्थ असाधारण संवैधानिक शक्ति संपूर्ण न्याय प्रदान किए जाने के लिए आवश्यक होती है और इसमें यह विचार भी सम्मिलित होता है कि न्यायालय को आवश्यक रूप से ऐसे निर्णय पारित करने के लिए सशक्त होना चाहिए, जिनसे न्यायसंगत परिणाम सुनिश्चित हो सकें । जब किसी न्यायालय के समक्ष मुश्किल प्रश्नों से परिपूर्ण मामले प्रस्तुत होते हैं तो वे विधि के ऐसे निर्वचन पर आधारित होते हैं*, जो सर्वोत्तम रूप से मामले की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त होते हैं और विद्यमान विधिक परिदृश्य – जैसेकि संविधान, कानून, नियम, विनियम, प्रथाएं और सामान्य विधि में न्यायसंगत होते हैं । ऐसे मामलों, जिनमें विधि के अनन्य नियम आधारित सिद्धांत न्यायिक प्रणाली के कामकाज को स्पष्ट करने या कोई ऐसा अनुतोष, जो पूर्ण न्याय सुनिश्चित करता हो, को सृजित करने में अपर्याप्त साबित होते हैं, तो यह आवश्यक है कि साम्यापूर्ण स्तरमानों के सिद्धांतों पर आधारित किसी प्रतिमान को लागू किया जाए । तथापि, अनुच्छेद 142 के अधीन

---

* रोनाल्ड ड्वर्किन द्वारा लिखित पुस्तक 'हार्ड केसेस, हार्वर्ड ला रिव्यू,' खंड 88, संख्या 6 (अप्रैल, 975), पृष्ठ 1057-1109.

शक्तियां असीमित होती हैं । यह अनुच्छेद न्यायालय को उसके समक्ष उपस्थित मामले में संपूर्ण न्याय सुनिश्चित करने के लिए प्राधिकृत करती हैं । अनुच्छेद 142 में न्याय, साम्या और सद्विवेक की धारणा और साथ ही न्यायालय द्वारा संपूर्ण न्याय प्रदान किए जाने की अनुपूरक शक्ति सम्मिलित होती है ।

ण.6 अनुदान और मान्यता

677. सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड का पक्षकथन यह है कि बाबरी मस्जिद का निर्माण वर्ष 1528 में बाबर द्वारा या उसकी पहल पर किया गया था और यह मस्जिद मुस्लिमों को नमाज अदा करने के लिए समर्पित की गई थी । उनका दावा है कि चूंकि इस मस्जिद में इसके निर्माण की तारीख से, जब तक इसको दिसंबर, 1949 में कुर्क नहीं किया गया, मुस्लिम निरंतर रूप से नमाज अदा करते रहे । इस मस्जिद के रख-रखाव का खर्च अभिकथित रूप से नकद अनुदान के रूप में वसूल किया जा चुका है, जिसका संदाय बाबर के शासनकाल के दौरान शाही कोषागार से किया गया और जो अंग्रेजों के साम्राज्यवादी शासन तक जारी रहा ।

678. इस मामले के महत्वपूर्ण पहलू का अभिवचन वाद संख्या 4 में किया गया है, वर्ष 1528 में मस्जिद के निर्माण और मुस्लिमों द्वारा मस्जिद के निर्माण के पश्चात् नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ इसके प्रयोग से संबंधित है । किंतु साक्षिक अभिलेख का यह महत्वपूर्ण पहलू किसी भी ऐसे साक्ष्य की अनुपलब्धता है, जिसके आधार पर यह उपदर्शित किया जा सके कि मस्जिद का प्रयोग उसके निर्माण के पश्चात् वर्ष 1856-57 तक नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाता रहा । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने वर्ष 1856-57 के दंगों तक नमाज के प्रयोजनार्थ मस्जिद के उपयोग के साक्ष्य की कमी के इस पहलू का उल्लेख किया है । विद्वान् न्यायाधीश ने सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की ओर से उपस्थित श्री जिलानी द्वारा किए गए निवेदनों का भी उल्लेख किया है, जिनको नीचे उद्धृत किया है :–

> "2314.... यदि हम प्रश्नगत विवाद्यकों के प्रयोजनार्थ यह उपधारणा करते हैं कि विवादित भवन का निर्माण वर्ष 1528 में इस प्रकार से किया गया था कि इस बाबत किसी भी प्रकार कोई

भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि उसके निर्माण के पश्चात् इस भवन का प्रयोग कभी भी मुस्लिमों द्वारा मस्जिद के रूप में वर्ष 1856-57 तक किया गया । श्री जीलानी ने दलीलों के दौरान ऋजुतापूर्वक स्वीकार किया कि यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ ऐतिहासिक या कोई अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि कम से कम वर्ष 1855 तक विवादित भवन में कब्जे या नमाज अदा किए जाने की क्या स्थिति थी ।"

इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई के दौरान वर्ष 1856-57 के पूर्व मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा किए जाने को उपदर्शित करते हुए किसी साक्ष्य की अनुपलब्धता पर की गई इस मताभिव्यक्ति पर सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. राजीव धवन द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से जोर दिया गया । विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने इस बाबत इनकार नहीं किया कि साक्ष्यिक अभिलेख, जिसका अवलंब सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा लिया गया, आवश्यक रूप से उस अनुदान के साथ आरंभ होते हैं, जिनको अभिकथित रूप से ब्रिटिश सरकार द्वारा मस्जिद के रख-रखाव के लिए जारी रखा गया था । इस बात को ध्यान में रखते हुए अब यह आवश्यक है कि साक्ष्य की संवीक्षा की जाए ।

I. मस्जिद के रख-रखाव के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदान किए गए अनुदान

679. सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के अनुसार साम्राज्वादी सरकार ने मस्जिद के रख-रखाव के लिए उस अनुदान को प्रदान किया जाना जारी रखा, जिसको आरंभिकत: बाबर के शासनकाल के दौरान प्रदान किया जाता था । इस संबंध में सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड ने लिखित निवेदनों के दौरान दस्तावेजी अभिलेखों का अवलंब लेते हुए लिखित निवेदन सूत्रबद्ध किए, जो इस प्रकार हैं :–

"(क) रजिस्ट्रार माफियात द्वारा जारी किए गए सरकारी आदेश तारीख 13 मार्च, 1860 और 29 जून, 1860 के उद्धरण से दर्शित होता है कि बाबर का नाम दानकर्ता/अनुदानकर्ता के रूप में दर्ज है ।

पुन: स्तंभ 13, जिसमें मुख्य आयुक्त का आदेश निर्दिष्ट किया गया है, में अभिकथित है कि – 'जहां तक मस्जिद के रख-

रखाव और मुसलमानों के उचित रूप से व्यवहार का संबंध है, मैं अनुदान जारी रखे जाने की सिफारिश करता हूं ।'

इसके अतिरिक्त स्तंभ 14, जिसका शीर्षक है 'सरकार का अंतिम आदेश' यह उल्लेख किया गया है कि – वह उद्देश्य जिसके लिए अनुदान जारी किया गया, को निर्मुक्त किए जाने का प्रश्न है, सरकारी आदेश संख्या 23/21 तारीख 29 जनवरी, 1860 में स्पष्ट किया गया है ।"

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अपने निर्णय में उल्लेख किया कि यह उसी रजिस्टर की प्रति प्रतीत होती है '<u>किंतु यह बुरी तरह से फटा हुआ दस्तावेज है और इसके पृष्ठ संख्या 163 पर समाविष्ट अंतर्वस्तु लगभग अपठनीय है</u>' । उन्होंने आगे निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

"(ख) किराया मुक्त भूमि अभिलेखों के जांच रजिस्टर (तारीख 14 मार्च, 1860), जिसके द्वारा सम्राट ने मीर बाकी को ग्राम शाहनवा स्थित मस्जिद अर्थात् बाबरी मस्जिद के बाबत 302 रुपए 3 आना 6 पाई का राजस्व अनुदान प्रदान किया । रजिस्टर में निम्नलिखित बिंदु अभिलिखित किए गए थे –

सम्राट बाबर के नाम का उल्लेख 'अनुदानकर्ता' के रूप में उल्लिखित था,

किराया मुक्त भूमि शाहनवा ग्राम में स्थित है और इस भूमि से 302 रुपए 3 आना और 6 पाई का वार्षिक राजस्व प्राप्त होता है,

इस किराया मुक्त भूमि का अनुदान बाबर द्वारा बाबरी मस्जिद के निर्माण के समय मुअज़्जिम और खातीब के वेतन के खर्चों को पूर्ण किए जाने के प्रयोजनार्थ वक्फ़ के रूप में प्रदान किया गया था ।

यह किराया मुक्त अनुदान सय्यद बाकी और तत्पश्चात् सय्यद हुसैन अली को उनके जीवनकाल के लिए दिया गया था ।

बोर्ड का विनिश्चय (तारीख 29 जून, 1880) यह था कि

अनुदान उस उद्देश्य के जारी रहने तक चलता रहेगा, जिसके लिए उसको भू-राजस्व से छूट प्रदान की गई थी ।”

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

इस दस्तावेज में यह अभिकथित है कि ‘अनुदान की तारीख की जानकारी नहीं’ है और दानदाता/अनुदानकर्ता का नाम ‘परिसाक्ष्य के आधार पर’ है । इसी प्रकार से यह अभिकथित किया गया है कि यह भूमि परिसाक्ष्यों के आधार पर अनुदान मुक्त है और सम्राट बाबर द्वारा अयोध्या में बाबरी मस्जिद के निर्माण के लिए वक्फ़ स्थापित किए जाने हेतु प्रदान की गई थी ताकि खर्चों की व्यवस्था की जा सके और ‘मुअज़्जिम और खातीब’ को वेतन दिया जा सके । इस आदेश की तारीख अज्ञात है :–

“(ग) रजिस्टर संख्या 6(ङ) के उद्धरण की प्रति से यह स्पष्ट है कि फैज़ाबाद तहसील द्वारा तारीख 29 जून, 1860 द्वारा भू-राजस्व से सशर्त छूट प्रदान की गई थी और इस भूमि के बाबत मोहम्मद असगर और मोहम्मद रज़ब अली के नाम उन व्यक्तियों के रूप में अभिलिखित हैं, जो किराया मुक्त भूमि अपने नामों में धारण करते हैं (स्तंभ 6 और 7 में दर्शित) ।”

II. नकद ननकार अनुदान का राजस्व मुक्त भूमि अनुदान में परिवर्तन

680. वर्ष 1864 में ब्रिटिश सरकार ने अयोध्या के समीप सोलापुर और बहोरनपुर ग्रामों में स्थित भूमि के नकद ननकार अनुदान को राजस्व मुक्त भूमि अनुदान में परिवर्तित कर दिया । अनुदान का प्रमाणपत्र रज़ब अली और मोहम्मद असगर के पक्ष में निष्पादित किया गया था, जिस पर मुख्य आयुक्त की मुहर अंकित थी । इस प्रमाणपत्र में यह उल्लिखित है :–

“सम्यक् रूप से जांच के पश्चात् यह साबित हो गया है कि रज़ब अली और मोहम्मद असगर ने 302 रुपए 3 आना और 6 पाई (तीन सौ दो रुपए तीन आना छह पाई) की नकद ननकार जिला फैज़ाबाद के मौज़ा शाहनवा के बाबत पूर्ववर्ती सरकार से किराया मुक्त अवधि के रूप में प्राप्त की थी । मुख्य आयुक्त गवर्नर जनरल इन काउंसिल के प्राधिकार के अंतर्गत इस अनुदान

को जारी रखने के लिए तब तक सहमत हैं, जब तक वह उद्देश्य, जिसके लिए इस अनुदान को स्थापित किया गया, निम्नलिखित शर्तों के अधीन जारी रहता है । वे प्रश्नगत अनुदान से संबंधित समस्त सनदों, हक विलेखों और अन्य दस्तावेज अभ्यर्पित कर देंगे । वे और उनके उत्तराधिकारी पुलिस और किसी सैन्य या राजनीतिक सेवा के मामलों में भू-धारकों के समस्त कर्तव्यों का कड़ाईपूर्वक निर्वहन करेंगे, जिनका निर्वहन प्राधिकारियों द्वारा उनसे कराए जाने की अपेक्षा की जाए और वे ब्रिटिश सरकार के दुश्मनों की योजनाओं में किसी भी प्रकार से किसी का पक्ष लेने की न्यायसंगत शंका के अंतर्गत कभी नहीं आएंगे । यदि मोहम्मद रज़ब अली और मोहम्मद असगर या उनके उत्तराधिकारियों द्वारा इन शर्तों में से किसी भी शर्त का उल्लंघन किया जाता है, तो अनुदान तुरंत समाप्त कर दी जाएगी ।"

न्यायमूर्ति अग्रवाल ने उपरोक्त दस्तावेजों पर विचार करते हुए यह मताभिव्यक्ति की कि :–

"2036. यद्यपि उपरोक्त दस्तावेजों से यह दर्शित होता है कि मीर रज़ब अली और मोहम्मद असगर को कुछ अनुदान की अनुज्ञा प्रदान की गई थी किंतु इससे यह प्रतीत नहीं होता कि संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा इस बाबत किसी प्रकार की जांच की गई थी और यदि की गई, तो इसका क्या आधार था ? मुस्लिमों के दावे के अनुसार बाबर का सेनापति मीर बाकी था, जो विवादित भवन के निर्माण का जिम्मेदार था, <u>जबकि मीर रज़ब अली ने स्वयं के बाबत यह दावा किया है कि वह सय्यद बाकी के पौत्र की पुत्री का दामाद था, मोहम्मद असगर मीर रज़ब अली का पुत्र था, इसलिए पिता और पुत्र ने अभिकथित मूल मुतवल्ली की चौथी पीढ़ी के साथ संबंध होने का दावा किया और अनुदान पर अपना दावा पेश किया । यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री अभिलेख पर उपलब्ध नहीं थी कि इस प्रकार का अनुदान पूर्व में इन दोनों में से किसी को प्रदान किया गया था । यद्यपि इन दोनों ने इसके लिए दावा किया था</u> । यदि हम वादपत्र में उल्लिखित प्रकथनों पर विश्वास करते हैं

कि अभिकथित वक्फ़ वर्ष 1528 में सृजित किया गया था, तो भी इस निष्कर्ष पर पहुंचना पूर्णतया अविश्वसनीय होगा कि विगत 325 वर्षों से अधिक की अवधि के दौरान यह उसकी केवल चौथी पीढ़ी हो सकती है और उसके रिश्तेदार अधिक से अधिक पांचवीं पीढ़ी के हैं । वर्ष 1860-61 में प्राधिकारी का यह कर्तव्य नहीं था कि वे इस प्रकार न्यायिक रूप से कार्य करते और इस प्रकार उनके द्वारा की गई जांच का कोई विवरण प्रस्तुत करते कि किस आधार पर अभिकथित जांच संचालित की गई थी । प्रत्यक्ष रूप से हमारे समक्ष मीर रज़ब अली की वंशावली, जो सय्यद बाकी, जो अविश्वसनीय रूप से वर्ष 1528 में विद्यमान रहा होगा, से आरंभ होती है । यहां पर यह कहना संदर्भ के परे नहीं होगा कि अनुदान का वृत्तांत इन दोनों व्यक्तियों अर्थात् पिता और पुत्र द्वारा अंग्रेजों से उनके पक्ष में मूल्यवान अनुदान अभिप्राप्त करने के प्रयोजनार्थ स्थापित किया होगा । किसी भी स्थिति में यह दस्तावेज मात्र यह दर्शित करते हैं कि ब्रिटिश सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्रश्नगत मस्जिद के प्रयोजनार्थ प्रदान की गई थी किंतु यह स्वयमेव ही इस बात का सबूत नहीं हो सकता कि विवादित भवन का प्रयोग हिंदुओं की बेदखली की सीमा तक या अन्यथा रूप से मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा किए जाने या इस्लामिक धार्मिक प्रयोजनों के लिए किया जाता था ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

उपरोक्त उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि रज़ब अली और मोहम्मद असगर को अनुदान प्रदान किया जाता था । अभिलेख से कतिपय महत्वपूर्ण पहलू उद्भूत होते हैं :–

(i) अनुदान के आधार को उपदर्शित करने वाली सम्यक् रूप से जांच की अनुपस्थिति;

(ii) मीर रज़ब अली द्वारा यह अभिकथित करते हुए स्थापित किया गया दावा कि वह मीर बाकी के पौत्र की पुत्री का दामाद था, जबकि मोहम्मद असगर मीर रज़ब अली का पुत्र था; और

(iii) इस प्रकार के किसी अनुदान, जो विगत 325 वर्षों के

इतिहास के दौरान प्रदान किया जा रहा था, के लिए आधार उपदर्शित करने वाली किसी सामग्री की अनुपस्थिति; और

(iv) मीर बाकी की चौथी पीढ़ी से संबंध रखने वाले किसी व्यक्ति द्वारा अभिलेख पर तीन शताब्दियों से अधिक की मध्यवर्ती अवधि के बाबत बिना किसी साक्ष्य के दावा स्थापित किया जाना ।

कुछ भी हो, उच्च न्यायालय ने उल्लेख किया है कि दस्तावेजों से यह दर्शित होता है कि मस्जिद के रख-रखाव के प्रयोजनार्थ अंग्रेजों द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जाती थी, किंतु इससे यह साबित नहीं हो जाता कि इस ढांचे का प्रयोग नमाज अदा किए जाने के उद्देश्य से किया जाता था । उपरोक्त राजस्व मुक्त भूमि के अनुदान के संबंध में निम्नलिखित दस्तावेजों का अवलंब लिया गया :–

"(i) तारीख 25 अगस्त, 1863 को अवध के सचिव मुख्य आयुक्त ने फैज़ाबाद मंडल के आयुक्त को यह उल्लेख करते हुए लिखा कि गवर्नर जनरल ने अयोध्या के निकट उपलब्ध कराई गई किराया मुक्त भूमि पर स्थित जन्मभूमि मस्जिद के रखरखाव के लिए शाश्वत रूप से प्रदान किए जाने वाले 302 रुपए 3 आना 6 पाई के नकद संदाय को परिवर्तित किए जाने के मुख्य आयुक्त के प्रस्ताव को मंजूरी प्रदान कर दी है । आगे यह अनुरोध किया गया कि अयोध्या के निकट कुछ नजूल भूमि प्रदान किए जाने के द्वारा परिवर्तन के लिए उपबंध किए जाएं ।" (प्रदर्श ए-14, वाद संख्या 1)

(ii) तारीख 31 अगस्त, 1863 को उप आयुक्त द्वारा किराया मुक्त भूमि (जो 302 रुपए 3 आना 6 पाई का वार्षिक किराया अर्जित कर रही थी) के संबंध में एक आदेश पारित किया गया, जिसको सरकार द्वारा मस्जिद जन्मस्थान के पक्ष में मंजूरी प्रदान की गई । सरकार द्वारा आदेशित किया गया कि प्रस्तावित भूमि का नक्शा, जिसको इस प्रयोजनार्थ चिह्नांकित किया गया है, में चौहद्दी स्पष्टत: उपदर्शित की जानी चाहिए और आयुक्त के उपायुक्त द्वारा भेजा जाना चाहिए ।

(iii) तारीख 13 सितंबर, 1860 को फैज़ाबाद के उपायुक्त द्वारा आदेश पारित किया गया, जिसमें यह अभिकथित किया गया कि वह भूमि, जिसको मस्जिद के लिए दी गई भूमि के बदले में दी जाने वाली भूमि के अनुमोदन के लिए चुना गया है, का नक्शा भेजा जा चुका है । अतः यह आदेश पारित किया गया कि अपर सहायक आयुक्त के समक्ष तुरंत कार्यवाही हेतु कार्रवाई प्रस्तुत की जाए ।

(iv) तत्पश्चात् इस बाबत विचार करते हुए अनेक आदेश पारित किए गए कि मस्जिद के प्रयोजनार्थ किस भूमि को आबंटित किया जाए ।

(v) तारीख 10 अक्तूबर, 1865 को यह आदेश पारित किया गया कि भूमि का कब्जा तुरंत प्रदान किया जाना चाहिए और इसकी अभिस्वीकृति प्राप्त की जानी चाहिए ।

(vi) तारीख 19 अक्तूबर, 1865 को यह संसूचित किया गया कि भूमि हस्तगत किए जाने के संबंध में कार्यवाही पूर्ण कर ली गई है और अभिस्वीकृति की भी पुष्टि कर दी गई है ।

(vii) तत्पश्चात् तारीख 30 अक्तूबर, 1865 को फाइल अभिलेखागार को प्रेषित कर दी गई ।"

शेष आगामी अंक में.......

संसद् के अधिनियम

विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान बोर्ड अधिनियम, 2008

(2009 का अधिनियम संख्यांक 9)

[17 जनवरी, 2009]

विज्ञान और इंजीनियरी में बुनियादी अनुसंधान का संवर्धन करने के लिए बोर्ड के गठन के लिए तथा ऐसे अनुसंधान में लगे हुए व्यक्तियों, शैक्षणिक संस्थाओं, अनुसंधान और विकास प्रयोगशालाओं, औद्योगिक समुत्थानों तथा अन्य अभिकरणों को ऐसे अनुसंधान के लिए वित्तीय सहायता देने और उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान बोर्ड अधिनियम, 2008 है ।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "बोर्ड" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन गठित विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान बोर्ड अभिप्रेत है ;

(ख) "अध्यक्ष" से बोर्ड का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(ग) "निधि" से धारा 10 की उपधारा (1) के अधीन गठित विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान निधि अभिप्रेत है ;

(घ) "सदस्य" से बोर्ड का सदस्य अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अध्यक्ष भी है ;

(ङ) "अन्वेक्षा समिति" से धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन गठित विशेषज्ञों की अन्वेक्षा समिति अभिप्रेत है ;

(च) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(छ) "सचिव" से धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन नियुक्त बोर्ड का सचिव अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान बोर्ड

3. बोर्ड का गठन और निगमन – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक बोर्ड का गठन करेगी जिसका नाम विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान बोर्ड होगा ।

(2) बोर्ड पूर्वोक्त नाम का शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला एक निगमित निकाय होगा, जिसे इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए संविदा करने की शक्ति होगी और उक्त नाम से वह वाद लाएगा और उसके विरुद्ध वाद लाया जाएगा ।

(3) बोर्ड निम्नलिखित व्यक्तियों से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग में भारत सरकार का सचिव, पदेन – अध्यक्ष ;

(ख) सदस्य-सचिव, योजना आयोग, पदेन – सदस्य ;

(ग) जैव प्रौद्योगिकी विभाग में भारत सरकार का सचिव, पदेन – सदस्य ;

(घ) विज्ञान और औद्योगिक अनुसंधान विभाग में भारत सरकार का सचिव, पदेन – सदस्य ;

(ङ) पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय में भारत सरकार का सचिव, पदेन – सदस्य ;

(च) वित्त मंत्रालय, व्यय विभाग में भारत सरकार का सचिव या उसका नामनिर्देशिती, पदेन – सदस्य ;

(छ) भारत सरकार के स्वास्थ्य अनुसंधान विभाग का सचिव, पदेन – सदस्य ;

(ज) शैक्षणिक संस्थाओं में विभिन्न विधाओं में वैज्ञानिक अनुसंधान में अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले तीन से अनधिक सदस्य ;

(झ) सरकारी अनुसंधान प्रयोगशालाओं में विभिन्न विधाओं में वैज्ञानिक अनुसंधान में अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले तीन से अनधिक सदस्य ;

(ञ) उद्योग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित अंतरराष्ट्रीय परियोजनाओं, सामाजिक-आर्थिक सेक्टर और अन्य सरकारी अनुसंधान प्रयोगशालाओं में विभिन्न विधाओं में वैज्ञानिक अनुसंधान में अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले चार से अनधिक सदस्य ।

(4) बोर्ड का प्रधान कार्यालय दिल्ली में या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में होगा ।

(5) उपधारा (3) के खंड (ज) से खंड (ञ) में विनिर्दिष्ट सदस्यों की अर्हताएं और अनुभव, पदावधि और भत्ते वे होंगे, जो विहित किए जाएं ।

(6) अध्यक्ष, बोर्ड के अधिवेशनों की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त,

ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा जो विहित किए जाएं या बोर्ड द्वारा उसे प्रत्यायोजित किए जाएं ।

(7) बोर्ड का कोई कार्य या कार्यवाही केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि –

(क) बोर्ड में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ;

(ख) बोर्ड के सदस्य के रूप में कार्य करने वाले किसी व्यक्ति की नियुक्ति में कोई त्रुटि है ;

(ग) बोर्ड की प्रक्रिया में ऐसी कोई अनियमितता है जिससे मामले के गुणागुण पर प्रभाव नहीं पड़ता है ।

4. बोर्ड का सचिव और अन्य अधिकारी तथा कर्मचारी – (1) बोर्ड, केन्द्रीय सरकार के परामर्श से, भारत सरकार के अपर सचिव की पंक्ति से अनिम्न पंक्ति के किसी विख्यात वैज्ञानिक को बोर्ड का सचिव नियुक्त कर सकेगा ।

(2) बोर्ड ऐसे अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को नियुक्त कर सकेगा जो वह इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के दक्ष निर्वहन के लिए आवश्यक समझे ।

(3) बोर्ड के सचिव और अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों की अर्हताएं और अनुभव, सेवा के निबंधन और शर्तें, जिनमें वेतन और भत्ते भी हैं, वे होंगे जो बोर्ड द्वारा बनाए गए विनियमों में विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

(4) बोर्ड देश के भीतर और बाहर दोनों से कार्मिकों की सेवाएं परामर्शियों, अभ्यागत वैज्ञानिकों के रूप में ऐसे निबंधनों और शर्तों तथा पारिश्रमिक पर ले सकेगा जो बोर्ड द्वारा बनाए गए विनियमों में विनिर्दिष्ट किया जाए और उनकी संक्रियाओं को देश के भीतर सुकर बनाएगा ।

5. विशेषज्ञों की अन्वेक्षा समिति – (1) बोर्ड, इस निमित्त बनाए

गए नियमों के अधीन रहते हुए, बोर्ड को परामर्श देने और सहायता करने के लिए विशेषज्ञों, विख्यात वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों से मिलकर बनने वाली विशेषज्ञों की एक अन्वेक्षा समिति का गठन करेगा ।

(2) अन्वेक्षा समिति निम्नलिखित व्यक्तियों से मिलकर बनेगी, अर्थात् :–

(i) विख्यात और अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक – अध्यक्ष ;

(ii) भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग का सचिव, पदेन – उपाध्यक्ष ;

(iii) भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, भारतीय विज्ञान अकादमी और भारतीय राष्ट्रीय इंजीनियरी अकादमी के अध्यक्ष, पदेन – सदस्य ;

(iv) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों के विशिष्ट विशेषज्ञों में से तीन से अनधिक सदस्य ; और

(v) बोर्ड का सचिव, पदेन – सदस्य ।

6. बोर्ड की समितियां – (1) बोर्ड इस निमित्त बनाए गए नियमों के अधीन रहते हुए, उतनी समितियां नियुक्त कर सकेगा जितनी इस अधिनियम के अधीन उसके कर्तव्यों के दक्ष निर्वहन और कृत्यों के पालन के लिए आवश्यक हों ।

(2) बोर्ड को उतनी संख्या में जितनी वह ठीक समझे, अन्य व्यक्तियों को, जो बोर्ड के सदस्य नहीं हैं, उपधारा (1) के अधीन नियुक्त किसी समिति के सदस्यों के रूप में सहयोजित करने की शक्ति होगी और इस प्रकार सहयोजित व्यक्तियों को समिति के अधिवेशनों में उपस्थित होने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा ।

7. बोर्ड की शक्तियां और कृत्य – (1) बोर्ड, विज्ञान और इंजीनियरी

के उभरते हुए क्षेत्रों में बुनियादी अनुसंधान की योजना तैयार करने, उसका संवर्धन और वित्तपोषण करने के लिए एक प्रमुख बहुविषयी अनुसंधान वित्तपोषण अभिकरण के रूप में कार्य करेगा ।

(2) बोर्ड की शक्तियों और कृत्यों में, अन्य बातों के साथ निम्नलिखित सम्मिलित होगा, –

(i) उभरते हुए क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगी अनुसंधान की योजना तैयार करने, उसका संवर्धन और वित्तपोषण करने के लिए एक प्रमुख बहुविषयी अनुसंधान अभिकरण के रूप में कार्य करना ;

(ii) विशेषज्ञों की अन्वेक्षा समिति द्वारा की गई सिफारिशों और दिए गए सुझावों पर विचार करना और उन पर विनिश्चय करना ;

(iii) मुख्य अंतर-विषयी अनुसंधान क्षेत्रों और व्यष्टियों, समूहों या संस्थाओं की पहचान करना और अनुसंधान करने के लिए उनका वित्तपोषण करना ;

(iv) विभिन्न पहचान किए गए क्षेत्रों में ऐसी संस्थाओं को शामिल करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर समन्वित कार्यक्रम विकसित करना जिनका अनुसंधान के संवर्धन में बहुआयामी प्रभाव होगा ;

(v) वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए अवसंरचना और पर्यावरण स्थापित करने में सहायता करना ;

(vi) विज्ञान और इंजीनियरी में बुनियादी अनुसंधान और संवर्धन करने के लिए शैक्षणिक संस्थाओं, अनुसंधान और विकास प्रयोगशालाओं तथा उद्योग के बीच सहचर्य प्राप्त करना ;

(vii) आधुनिक प्रबंधन पद्धतियों को अंगीकार करके, अनुसंधान, जिसके अंतर्गत मानीटरी और मूल्यांकन भी है, के लिए त्वरित वित्तपोषण का उपबंध करने के लिए प्रबंधन प्रणाली तैयार करना ;

(viii) अन्तरराष्ट्रीय सहयोगकारी परियोजनाओं में, जहां आवश्यक या वांछनीय हो, सहभागिता पैदा करना ; और

(ix) विद्‌यमान विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान परिषद् स्कीम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्‌वारा प्रारंभ की गई या वित्तपोषित बुनियादी अनुसंधान परियोजनाओं और कार्यक्रमों को अपने हाथ में लेना और जारी रखना ।

(3) बोर्ड, उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए व्यष्टियों, शैक्षणिक संस्थाओं, अनुसंधान और विकास प्रयोगशालाओं, उद्‌योगों और अन्य संगठनों को अनुदानों और ऋणों के रूप में वित्तीय सहायता दे सकेगा ।

अध्याय 3

वित्तीय सहायता मंजूर करने के लिए आवेदन

8. वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए आवेदन – (1) धारा 7 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए कोई आवेदन बोर्ड को ऐसे प्ररूप में किया जाएगा जो विहित किया जाए ।

(2) बोर्ड, आवेदन की परीक्षा करने के पश्चात् और ऐसी जांच करने या ऐसा स्पष्टीकरण मांगने के पश्चात् जो वह आवश्यक समझे, लिखित आदेश द्‌वारा, या तो वित्तीय सहायता मंजूर कर सकेगा अथवा उससे इनकार कर सकेगा ।

अध्याय 4

वित्त, लेखा और संपरीक्षा

9. केन्द्रीय सरकार द्‌वारा अनुदान और उधार – केन्द्रीय सरकार, संसद् द्‌वारा, इस निमित्त विधि द्‌वारा, किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, बोर्ड को अनुदानों और उधारों के रूप में उतनी धनराशियों का संदाय कर सकेगी जितनी वह सरकार आवश्यक समझे ।

10. विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान निधि – (1) विज्ञान और इंजीनियरी अनुसंधान निधि के नाम से एक निधि का गठन किया जाएगा और उस निधि में निम्नलिखित जमा किए जाएंगे, –

(क) धारा 9 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बोर्ड को दिया गया कोई अनुदान और उधार ;

(ख) किसी अन्य स्रोत से, बोर्ड द्वारा प्राप्त सभी राशियां जिसमें संदान सम्मिलित हैं ;

(ग) निधि से अनुदत्त रकमों की वसूलियां ; और

(घ) निधि की रकम के विनिधान से कोई आय ।

(2) निधि का उपयोग निम्नलिखित की पूर्ति के लिए किया जाएगा, –

(क) इस अधिनियम के उद्देश्य और इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत प्रयोजनों के लिए व्यय ;

(ख) बोर्ड के सदस्यों, अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और अन्य व्यय ;

(ग) परामर्शियों और अभ्यागत वैज्ञानिकों के पारिश्रमिक ; और

(घ) इस अधिनियम के अधीन बोर्ड के कृत्यों का निर्वहन करने में उसके व्यय ।

11. बजट – बोर्ड, प्रत्येक वित्तीय वर्ष में ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर जो विहित किया जाए, आगामी वित्तीय वर्ष के लिए अपना बजट तैयार करेगा, जिसमें बोर्ड की प्राक्कलित प्राप्तियां और व्यय दर्शाए जाएंगे और उसे केन्द्रीय सरकार को भेजेगा ।

12. वार्षिक रिपोर्ट – बोर्ड, प्रत्येक वित्तीय वर्ष में ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर जो विहित किया जाए, अपनी वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा जिसमें पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के दौरान उसके क्रियाकलापों का पूरा विवरण दिया जाएगा और उसकी एक प्रति केन्द्रीय सरकार को भेजेगा ।

13. लेखा और संपरीक्षा – (1) बोर्ड, उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का एक वार्षिक विवरण, ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जैसा केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक या इस अधिनियम के अधीन बोर्ड के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्‌वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के उस संपरीक्षा के संबंध में वही अधिकार, विशेषाधिकार और प्राधिकार होंगे जो भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक के सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और उसे विशिष्ट रूप में बहियां, लेखा, संबंधित वाउचर और अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने और बोर्ड के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(3) बोर्ड के लेखाओं की संपरीक्षा भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षा द्‌वारा प्रतिवर्ष की जाएगी और उस संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय, बोर्ड, द्‌वारा भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(4) बोर्ड, ऐसी तारीख के पूर्व, जो विहित की जाए, अपने लेखाओं की संपरीक्षित प्रति, संपरीक्षक की रिपोर्ट के साथ, केन्द्रीय सरकार को भेजेगा ।

14. वार्षिक रिपोर्ट और संपरीक्षक की रिपोर्ट का संसद् के समक्ष रखा जाना – केन्द्रीय सरकार वार्षिक रिपोर्ट और संपरीक्षक की रिपोर्ट, उसकी प्राप्ति के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

अध्याय 5

प्रकीर्ण

15. बोर्ड को विवरणियों का दिया जाना – (1) बोर्ड से वित्तीय सहायता प्राप्त कर रहा कोई औद्‌योगिक समुत्थान या कोई संस्था, बोर्ड

को, ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर, जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, विवरणियां देगा ।

(2) बोर्ड, इस धारा के अधीन दी गई किसी विवरणी की सत्यता को सत्यापित करने के लिए, किसी अधिकारी को किसी भी समय उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी औद्योगिक समुत्थान या संस्था का निरीक्षण करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा ।

16. केन्द्रीय सरकार की निदेश देने की शक्ति – (1) इस अधिनियम के पूर्वगामी उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना बोर्ड, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों और कर्तव्यों के निर्वहन में नीति संबंधी प्रश्नों पर ऐसे निदेशों से आबद्ध होगा, जो केन्द्रीय सरकार, समय-समय पर, उसे लिखित रूप में दे :

परन्तु बोर्ड की इस उपधारा के अधीन कोई निदेश दिए जाने से पहले यथासाध्य, अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाएगा ।

(2) कोई प्रश्न नीति संबंधी है या नहीं, इस पर केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अंतिम होगा ।

17. केन्द्रीय सरकार को बोर्ड को अतिष्ठित करने की शक्ति – (1) यदि किसी समय केन्द्रीय सरकार की यह राय है कि –

(क) बोर्ड, गंभीर आपात के कारण, इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा या उनके अधीन उस पर अधिरोपित कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है ; या

(ख) बोर्ड ने, इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए किसी निदेश के अनुपालन में या इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा या उनके अधीन अधिरोपित कृत्यों और कर्तव्यों के निर्वहन में बार-बार व्यतिक्रम किया है और ऐसे व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप बोर्ड की वित्तीय स्थिति या बोर्ड के प्रशासन की हानि हुई है ; या

(ग) ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण लोकहित में ऐसा करना आवश्यक हो गया है,

तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, छह मास से अनधिक की उतनी अवधि के लिए जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, बोर्ड को अतिष्ठित कर सकेगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन बोर्ड को अतिष्ठित करने वाली अधिसूचना के प्रकाशन पर, –

(क) सभी सदस्य, अतिष्ठित किए जाने की तारीख से उस रूप में अपने पद रिक्त कर देंगे ;

(ख) ऐसी सभी शक्तियों, कृत्यों और कर्तव्यों का, जिनका प्रयोग या निर्वहन बोर्ड द्वारा या उसकी ओर से इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा या उनके अधीन, किया जा सकता है, उपधारा (3) के अधीन बोर्ड का पुनर्गठन किए जाने तक ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा जो केन्द्रीय सरकार निदेश करे, प्रयोग और निर्वहन किया जाएगा ; और

(ग) बोर्ड के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन सभी संपत्ति, उपधारा (3) के अधीन बोर्ड का पुनर्गठन किए जाने तक केन्द्रीय सरकार में निहित रहेगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन जारी की गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अतिक्रमण काल की समाप्ति पर, केन्द्रीय सरकार, नई नियुक्ति करके बोर्ड का पुनर्गठन कर सकेगी और ऐसी दशा में, ऐसा या ऐसे व्यक्ति, जिसने या जिन्होंने उपधारा (2) के खंड (क) के अधीन अपने पद रिक्त किए हैं, नियुक्ति के लिए निरर्हित नहीं समझा जाएगा/समझे जाएंगे :

परंतु केन्द्रीय सरकार, अतिक्रमण काल की समाप्ति के पूर्व किसी भी समय, इस उपधारा के अधीन कार्रवाई कर सकेगी ।

(4) केन्द्रीय सरकार, उपधारा (1) के अधीन जारी की गई अधिसूचना और इस धारा के अधीन की गई किसी कार्रवाई की और उन परिस्थितियों की, जिनके कारण ऐसी कार्रवाई की गई है, पूरी रिपोर्ट यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

18. प्रत्यायोजन – बोर्ड, लिखित, साधारण या विशेष आदेश द्‌वारा, बोर्ड के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य या किसी अधिकारी को ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के, यदि कोई हो, अधीन रहते हुए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, इस अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियां और कृत्य (धारा 21 के अधीन शक्ति के सिवाय) जो वह आवश्यक समझे, प्रत्यायोजित कर सकेगा ।

19. सद्‌भावनापूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन सद्‌भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार या बोर्ड या उसके द्‌वारा नियुक्त किसी समिति अथवा बोर्ड या ऐसी समिति के किसी सदस्य या सरकार के या बोर्ड के किसी अधिकारी या कर्मचारी या केन्द्रीय सरकार या बोर्ड द्‌वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के विरुद्‌ध नहीं होगी ।

20. नियम बनाने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्‌वारा, नियम बना सकेगी ।

(2) पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 3 की उपधारा (5) के अधीन बोर्ड के सदस्यों की अर्हताएं और अनुभव, पदावधि और अन्य भत्ते ;

(ख) धारा 3 की उपधारा (6) के अधीन अध्यक्ष की शक्तियां और कर्तव्य ;

(ग) धारा 5 के अधीन अन्वेक्षा समिति का गठन ;

(घ) धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन समितियों का गठन ;

(ङ) धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन आवेदन का प्ररूप ;

(च) वह प्ररूप जिसमें और वह समय जब बोर्ड धारा 11 के अधीन अपना बजट और धारा 12 के अधीन अपनी वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा ;

(छ) धारा 13 की उपधारा (1) के अधीन लेखाओं के वार्षिक विवरण का प्ररूप और वह तारीख जिससे पूर्व उस धारा की उपधारा (4) के अधीन लेखाओं की संपरीक्षित प्रति केन्द्रीय सरकार को भेजी जा सकेगी ;

(ज) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना है या विहित किया जाए अथवा जिसके संबंध में नियमों द्वारा उपबंध किया जाना है या किया जाए ।

21. विनियम बनाने की बोर्ड की शक्ति – (1) बोर्ड, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, इस अधिनियम के उपबंधों को साधारणतः कार्यान्वित करने के लिए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम और नियमों से संगत विनियम बना सकेगा ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के संबंध में उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (2) के अधीन बोर्ड के सचिव और अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों की अर्हताएं और अनुभव, सेवा के निबंधन और शर्तें जिनमें वेतन और भत्ते सम्मिलित हैं ;

(ख) वह प्ररूप जिसमें, और वह समय जिस पर, धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन बोर्ड को, विवरणियां दी जा सकेंगी ।

22. नियमों और विनियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम और प्रत्येक विनियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब

वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी और यदि उस सत्र या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभावी हो जाएगा । किन्तु नियम या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभावी होने से उस नियम या विनियम के अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

———————

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास – (103वां संविधान संशोधन तक) – श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व – डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ` 2,100/-, ` 1,300/- और ` 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को ऑन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in